Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिलेख-प्रवेशिका

(भारतीय अभिलेख-शास्त्र, पुरालिपिशास्त्र एवं कालनिर्धारण-पद्धति)

रवीन्द्र कुमार वसिष्ठ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिलेख-प्रवेशिका

(भारतीय अभिलेख-शास्त्र, पुरालिपिशास्त्र एवं कालनिर्धारण-पद्धति)

रवीन्द्र कुमार वसिष्ठ
एम०ए०, पी-एच०डी०
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर
शिवाजी कॉलेज
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
दिल्ली

विद्यानिधि प्रकाशन
दिल्ली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकाशक :
विद्यानिधि प्रकाशन
डी-10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली-110090
Email: vidyanidhiprakashan@hotmail.com

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2018

ISBN : 978-93-85539-02-2

मूल्य : 150.00

मुद्रक :
विशाल कौशिक प्रिंटर्स
दिल्ली।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समर्पण

भारत-सरकार द्वारा रुपये के चिह्न

₹

को समर्पित

इसमें अनायास ही ऊपरी भाग
ब्राह्मी लिपि का 'र'
तथा
नीचे का भाग
देवनागरी का 'र'
बन गया
इस प्रकार
यह ब्राह्मी से नागरी तक की यात्रा का
मूक प्रदर्शक बन गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन संस्कृत के अपने ही अंतर्गत Inter-disciplinary course है। संस्कृत भारत के प्राचीन काल के इतिहास के निर्माण में मुख्य भूमिका भी निभाती है। जिन्होंने कहा कि भारतीयों में इतिहास के प्रति सजगता नहीं थी उन्हें अभिलेखों से पता चल सकता है कि विभिन्न नरेशों ने अपनी वंशावली, अपने कार्यकलापों का वर्णन किया है; साथ ही व्यक्तिगत लेखों में भी लोगों ने अपने शासक एवं समाज का वर्णन प्रस्तुत किया है। समस्या मात्र उन समस्त अभिलेखों की वर्णित विषय-सामग्री का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना है। यह समस्या भी ऐसी नहीं है जिसमें कोई गहन बाधा हो। संस्कृत के छात्र साहित्य, दर्शन, व्याकरण, नाटकों इत्यादि के अध्ययन से तो जुड़े होते हैं अभिलेखों के अध्ययन से वे इतिहास से जुड़ते हैं। प्रस्तुत कार्य उनके लिए इस क्षेत्र में प्रवेश हेतु सरल रूप से प्रस्तुतीकरण का प्रयत्न किया गया है। **दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए निर्धारित अभिलेखों से संबंधित विभिन्न पाठ्यक्रमों के विषयों को इस पुस्तक में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है।**

इस विषय में मार्गदर्शन एवं आधार में दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व डीन ऑफ कॉलेजेज़ डॉ. एस.एस. राणा का महत्वपूर्ण योगदान है। जो कुछ भी प्रस्तुत पुस्तक में लिखा गया है वह उनके शिक्षण का ही प्रतिरूप हैं। उन्हें धन्यवाद करना बहुत छोटी बात है। अत्यन्त अद्वितीय योगदान शब्दों में अभिव्यक्त करना मेरे लिए असंभव है। प्रोफेसर सत्यपाल नारंग का कथोपकथन इस क्षेत्र में मार्गदर्शन के लिए अत्यधिक सहायक बना। इस क्षेत्र में अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए प्रेरक अपने मित्र प्रोफेसर (डॉ०) रमेश भारद्वाज को धन्यवाद देना मैं अपना दायित्व समझता हूँ। मेरे मित्र ने विभिन्न संस्थानों में इस विषय को लेकर मेरी अनावृत्ति करायी, मैं इसके लिए असीम आभारी हूँ। जैन समाज के श्रद्धेय महानुभावों के समक्ष प्रस्तुत कार्य के लिए प्राप्त प्रेरणा के लिए नतमस्तक हूँ।

परिवार के विभिन्न सदस्यों ने मुझे मेरे उत्तरदायित्वों से मुक्त रखा इसके लिए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रेम, गौरव, नवधा (यश), वैशाली, क्षितिज, अनन्या, कार्त्तिकेय मिराया तथा अन्य अनेकों की वन्दना तथा आभार प्रकट करता हूँ। असंख्य मित्रों को इस कार्य में उत्साहवर्धक प्रेरणा के लिए धन्यवाद की अभिव्यक्ति से उनके प्रति स्नेह प्रकट करता हूँ। देवलोकवासी अपने माता-पिता के प्रति गहन श्रद्धा प्रस्तुत करना अपना दायित्व समझता हूँ जिन्होंने व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित होते हुए भी इच्छा-अनिच्छा को प्रकट न करते हुए अध्ययन-अध्यापन जैसे अनजान क्षेत्रों में जाने से मुझे रोका नहीं। उनके धन्यवाद के बिना सब कुछ अपूर्ण हैं।

अन्त में कहना चाहता हूँ कि प्रस्तुत कार्य के लिए अनेक पूर्ववर्ती विद्वानों के कार्यों ने इस क्षेत्र में उत्साह एवं प्रेरणा दी है। प्रिंसेप, कनिंघम, फ्लीट, ब्यूलर से लेकर के.वी. रमेश, दिनेश चन्द सरकार, अहमद हसन दानी, चन्द्रिका सिंह उपासक, ठाकुर प्रसाद वर्मा तक के कार्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अद्वितीय कार्य का आज भी कोई मुकाबला नहीं, जिन्होंने उस समय अभिलेख एवं पुरालिपि शास्त्र में हिन्दी माध्यम में अपना कार्य प्रस्तुत किया जब इस भाषा में इस कार्य की ओर ध्यान नहीं खिंच सका था। जितने भी आज पूरे लिपिशास्त्र में कार्य होते हैं वे ओझा के बिना अधूरे हैं। वे सब ओझा की छाया हैं।

यह एक प्राइमर-प्रवेशक कार्य है, अनेक तथ्य छूट गए होंगे, अभिलेख-शास्त्र के विषय में आरम्भिक अध्ययन हेतु विषय-सामग्री को संक्षिप्त रखा गया है जिससे विषय भी बोझिल न बन सके। कुछ तथ्य जानबूझकर भी नेपथ्य में छोड़े गए हैं जिन्हें विद्यार्थी स्नातकोत्तर के स्तर पर जान सकेंगे। समस्त विज्ञों से आकांक्षा है कि वे अपने सुझावों से अवगत करवायें। उन सब का आभारी रहूँगा। इन सुझावों को भविष्य में अंगीकार किया जा सकेगा। विद्यानिधि के बद्रीनाथ तिवारी जी की हिम्मत का सम्मान करता हूँ जो कार्य पूरा करवाने के लिए लगे ही रहे।

- रवीन्द्र कुमार वसिष्ठ
(rkvasishtha@gmail.com)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथश्री

इतिहास प्राचीन घटनाक्रम होता है। विभिन्न समूहों में घटित घटनाएँ इतिहास बनाती हैं। इतिहास काल-क्रम से अनेक भागों में बांट्य जाता है- प्राचीन काल का इतिहास, मध्यकाल का इतिहास, आधुनिक इतिहास, वर्तमान काल का समकालीन इतिहास इत्यादि। विभिन्न धाराओं में इनका अध्ययन होता है। प्राचीन काल के इतिहास से भी पूर्ववर्ती इतिहास को जानने का प्रयत्न किया जाता है- प्रगितिहास, प्रस्तर-कालीन इतिहास, लौह-कालीन इतिहास, इत्यादि। इतिहास की विभिन्न विचारधाराएँ भी देखने में आती हैं। इन विचारधाराओं के आधार पर इतिहास प्रिय एवं अप्रिय दो रूपों का पाया जाता है। एक विचारधारा को मानना एवं उसका प्रचार करना प्रिय इतिहास की श्रेणी में आता है। वही यदि किसी को पसन्द नहीं है और उसका विरोध करता है तो वह अप्रिय इतिहास की श्रेणी में चला जाता है। ऐसी असंख्य घटनाएं हैं जो प्रिय इतिहास की श्रेणी में भी आता है तथा अप्रिय इतिहास की श्रेणी में भी चली जाती हैं। आर्यों का बाहर से आना, राम सेतु का राम से सम्बन्धित होना जैसी असंख्य घटनाएँ प्रिय और अप्रिय इतिहास के रूप में परिगणित होती हैं। इतिहास के विद्यार्थियों के रूप में एवं शिक्षा के रूप में दोनों प्रकार की विचारधाराओं का अध्ययन-अध्यापन होना अपेक्षित है।

इतिहास-निर्माण में अनेक घटक-तत्वों को लिया जा सकता है; इनमें प्रमुख हैं- पुरातत्त्व, अभिलेख, सिक्के, मुद्राएँ तथा पाण्डुलिपियाँ। पुरातत्त्व अतीत में दबे अवशेष है। इनके वैज्ञानिक ढंग से उत्खनन के पश्चात् इनकी सहायता से इतिहास की रचना में इनका प्रयोग किया जाता है। इसमें भग्नावशेषों को व्यवस्थित ढंग से एकत्रित करके इनका पारस्परिक तुलनात्मक उपयोग किया जाता है। इसकी कोई समय सीमा नहीं होती। अतः वह काल्पनिक एवं सुविधानुसार इतिहास जानने का प्रयत्न होता है। यह काल-विभाजन पूर्व-पाषाण-युग, मध्य-पाषाण युग, उत्तर-पाषाण युग, कांस्य-युग तथा लौह-युग इत्यादि के रूप में किया गया है। लिपियों के प्रयोग से पूर्व का इतिहास पुरातत्त्व से सम्बन्धित अवशेषों की सहायता द्वारा तैयार किया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाता है। पुरातत्त्वीय खोज अधिकांशः खुदाई में प्राप्त पदार्थों पर आधारित होती है। यह खुदाई विशेष ढंग से व्यवस्थित रूप से की जाती है। यह खुदाई–उत्खनन–कुछ संकेतों पर आधारित स्थानों पर की जाती है। ये संकेत ऊँचे टीले, तलचिह्नों, छाड़ों को गाढ़ कर अथवा भूमि–परीक्षा, प्राचीन–साहित्य एवं परम्पराओं, वायुमार्ग से प्राप्त चित्रों, दैविक परिवर्तनों इत्यादि से प्राप्त होते हैं। आधुनिक नवीन वैज्ञानिक प्रणालियों से भी पुरातात्विक महत्व के स्थलों की प्राप्ति में सहयोग मिलता है। मेगर–अर्थ–टेस्टर से मिट्टी का परीक्षण करके उसमें उपलब्ध विभिन्न तत्वों की स्थिति को जाना जाता है। प्रोटेन मैग्नेटोमीटर की सहायता से भूमि के भीतर की मिट्टी की परीक्षा करके पुरातत्त्व के महत्त्व के स्थानों को जाना जाता है मिट्टी के हर थोड़ी दूरी पर परीक्षण से नीचे छिपे अवशेषों की खोज की जा सकती है। बेथिस्कैप्लस नामक यंत्र से पानी के अन्दर छिपे अवशेषों का पता लगाया जा सकता है।

उत्खनन कार्य में भूमि के नीचे विभिन्न स्तर प्राप्त होते हैं। ये विभिन्न स्तर भिन्न–भिन्न प्रकार से जाने जा सकते हैं। एक ही स्थान पर एक से अधिक स्तर प्राप्त हो सकते हैं। ये मिट्टी के रंग, मिट्टी के ठोस अथवा लचीले–पन से पहचाने जाते हैं। ये स्तर प्रायः टेढ़े–मेढ़े एवं उबड़–खाबड़ होते हैं। मिट्टी का एक प्रकार का स्तर एवं/अथवा रंग उसके एक काल से सम्बन्धित होना प्रकट करता है। विभिन्न प्रकार की ईंटों का प्रयोग भी स्तर–निर्धारण में सहायक होता है। ईंटों के प्रयोग के साथ दीवारों पर फर्श के अवशेष चिह्न उस स्थान पर हुए निवास का संकेत करते हैं। हरी काई की उपलब्धता उस स्थान पर आई बाढ़ का संकेत करती है। इसी प्रकार सिक्के, मृद्भाण्ड के टुकड़े, राख इत्यादि संकेतों से इतिहास– निर्माण में सहायता मिलती है।

पुरातात्विक सामग्री वैज्ञानिक ढंग से किए गए उत्खनन पर आधारित होती है। यह सामग्री कभी–कभी साहित्यिक साक्षियों से भी अनुमोदित होती है। इनसे नवीन तथ्यों का उद्भावन भी होता है जिनकी कल्पना भी नहीं की गई होती। प्रागैतिहासिक काल का इतिहास पुरातात्त्विक खोजों से प्राप्त सामग्रियों पर आधारित होता है। भारत में मोहन–जोदड़ो, हड़प्पा, लोथल, रोपड़, कालीबंगा इत्यादि स्थानों से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही प्रागैतिहासिक काल के इतिहास की रचना हुई है। ऐतिहासिक युग के अनेक तथ्यों पर भी उत्खनित सामग्री से इतिहास–निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। सिंधु घाटी के संदर्भ में— सिंधु नदी की सहायक नदी रावी की घाटी में हड़प्पा का उत्खनन सर्वप्रथम 1920 ई० में माधोस्वरूप वत्स तथा दयाराम साहनी के नेतृत्व में हुआ था। मोहनजोदड़ो में राखल दास बेंनर्जी ने 1922 ई० उत्खनन कार्य का नेतृत्व

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया। तत्पश्चात् 1925 ई० में मैके ने चहूं जोदड़ो में उत्खनन कार्य किया। एन.जी मजूमदार, स्टीन, पिगट, व्हीलर इत्यादि पुरातत्व-विदों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं अद्वितीय कार्य किये। यह क्रम आगे बढ़ता गया। पुरातत्त्व-विभाग, राज्यों के पुरातत्त्व-विभाग, विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थाओं इत्यादि के द्वारा भारत में अनेक क्षेत्रों में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण तथा उत्खनन करवाये गए ।

अभिलेख शब्द अंग्रेजी शब्द inscrciption का हिंदी अर्थ हैं। यद्यपि inscrciption का अर्थ उत्कीर्ण लेख बनाता है फिर भी प्राचीन लेखों को अभिलेख अर्थ के रूढ़ कर दिया गया है। लेखन-कला के ज्ञान से अभिलेखों की स्थिति प्रारम्भ हुई। अभिलेख प्रस्तर, शिला, पाषाण-स्तम्भ, धातु इत्यादि पर उत्कीर्ण कर लिखे गए लेख हैं। पत्र-पत्ते तथा कागज-मात्र मात्र लिखे गए लेखांकित लेख भी अभिलेख की श्रेणी में आते हैं। सिक्कों पर सांचो से अक्षरों को उभारकर, विभिन्न प्रकार के धातु-पत्रों पर वर्णों को उकेर कर, उभरे हुए लिखित कार्यों का भी अभिलेख के अन्तर्गत समावेश किया जाता है इस प्रकार प्राचीन काल में प्रस्तरों, शिलाओं, स्तम्भों, धातु पत्रों, धातुस्तम्भों, पट्टों, सिक्कों, मुद्राओं इत्यादि पर उत्कीर्ण अथवा उकेरे गए लेख अभिलेख की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

भारत में अभिलेख के रूप में प्राचीनतम उदाहरण सिन्धु-सरस्वती के क्षेत्र में उपलब्ध मुद्राओं के रूप में है। इन्हें अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी सफलतापूर्वक पढ़ा नहीं जा सका है। अतः इन मुद्राओं पर उपलब्ध भाषा एवं लिपि विषयक सामग्री के बारे में आधिकारिक रूप से कुछ भी नहीं जा सका है। मौर्यों के उद्भव के पश्चात् शिलाओं, प्रस्तरों, स्तम्भों पर लेख लिखवाए गए। ये प्राचीनतम पठित अभिलेख माने जाते हैं। कुछ अभिलेख इनसे पूर्व के भी प्राप्त होते हैं जिनमें बड़ली से प्राप्त अभिलेख मुख्य हैं। मौर्यों के पश्चात् अनेक लेखों की प्राप्ति लेखन की रूचि की ओर संकेत करती है। अभिलेखों से अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है तथा अनेक तथ्य उद्घाटित होते हैं। शासकों की शृंखला, उनके वंश विचार, विभिन्न पूर्वापर तथा समकालीन नरेशों, समसामयिक घटनाओं पर अभिलेख प्रकाश डालते हैं। इसके साथ ही अभिलेख सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक जैसे महत्वपूर्ण विषयों की घटनाक्रम को जानने में सहायक होते हैं।

अभिलेखों का अध्ययन अभिलेखशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। अभिलेखों की भाषा, लिपि, विषय-वस्तु जैसे विषयों पर इसमें अध्ययन किया जाता है। प्राचीन भारत में अभिलेख में मुख्यतया में पालि, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं का प्रयोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्त होता है। जनसाधारण की भाषा को लेकर अशोक ने अपने लेख लिखवाए यह भाषा जन-साधारण अर्थात् प्रकृति की भाषा होने के कारण प्राकृत कहलाती है। इस भाषा को पूर्ववर्ती पालि भाषा का परिष्कृत रूप भी कहा जा सकता है। शुंग, सातवाहन कालीन अभिलेखों तक इस भाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। द्वितीय शताब्दी ईस्वी से संस्कृत भाषा का प्रयोग रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख से प्राप्त होना प्रारम्भ होता है। यहीं से अभिलेखों में काव्यमय संस्कृत गद्य के उदाहरण प्राप्त होने लगे हैं। गुप्त, गुप्तोत्तर काल, उत्तर-प्राचीन काल से सम्बन्धित पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत से प्राप्त होने वाले लेखों की भाषा संस्कृत है। बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक संस्कृत एकछत्र छायी रही। पर इस संस्कृत में प्राकृत के शब्दों एवं व्याकरण का भी बहुलता से प्रयोग प्राप्त होता है। यह मिश्रित भाषा हायब्रिड संस्कृत के नाम से जानी जाती है।

सिन्धु-सरस्वती क्षेत्र से प्राप्त मुद्राओं को छोड़ कर दें तो अभिलेखों में मुख्य रूप से ब्राह्मी लिपि तथा खरोष्ठी लिपि- दो लिपियों का प्रयोग उपलब्ध होता है। पश्चिमोत्तर भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग होता था। यह दाएँ से बायीं ओर लिखी जाती थी। शेष भारत में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता था। इस लिपि से भारत की लगभग समस्त लेखन-शैलियों का उद्भव हुआ है। वास्तव में आधुनिक भारतीय लिपियाँ ब्राह्मी लिपि का ही विकसित स्वरुप है। यह बाएँ से दायीं ओर लिखी जाती थी। समयानुसार, क्षेत्र अथवा राजवंशों के अनुसार सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन में सुविधा के लिए ब्राह्मी लिपि का भिन्न-भिन्न नामकरण हुआ।

प्राचीन भारतीय अभिलेख (राज्य) शासन, प्रशस्ति, दान-पत्र इत्यादि भेदों के साथ वर्गीकृत किए जाते हैं। अशोक ने अपने लेखों को धर्म-लेख कहा है। शासकों की प्रशंसा से युक्त लेख स्तुत्यात्मक अथवा प्रशंसात्मक-लेख माने जाते हैं इस प्रकार के लेखों में, जूनागढ़ से प्राप्त रुद्रदामन का अभिलेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति, मंदसौर से प्राप्त अभिलेख इत्यादि उल्लेखनीय हैं। विजय की घटनाओं को लेकर भी अभिलेख उत्कीर्ण किए गए हैं। वीरता के ओजस्वी प्रदर्शन करने वाले लोगों में चन्द्र का महरौली लौह-स्तम्भ अभिलेख, स्कन्दगुप्त का भीतरी अभिलेख उल्लेखनीय हैं। आज्ञापत्र मुख्यतः दान से सम्बन्धित अभिलेख हैं। ये अधिकांशः ताम्रपत्रों पर लिखित हैं। इनमें दान-कर्ता, दान ग्रहण-कर्ता, दान का परिमाण, दान की वस्तु इत्यादि का स्पष्ट वर्णन होता है। ये सभी प्रकार के लेख अपने समय के शासक के वंश-वृक्ष का भी वर्णन प्रस्तुत कर देते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिलेख समकालीन इतिहास की रचना के मुख्य स्रोत होते हैं। ये मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– शासक द्वारा स्वयं लिखवाए गए और दूसरे शासक के आधीन काम करने वाले अधिकारी। एवं उस समय के व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा लिखवाये गए। लोगों अथवा संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा लिखे गए लेख बहुतायत में धार्मिक दृष्टिकोण से, मंदिर अथवा प्रतिमा की स्थापना एवं पूजन के वर्णन के उद्देश्य से और दान के लक्ष्य में लिखवाए ले गए होते हैं। इनमें प्रसंगवश प्रशंसात्मक उल्लेख आ जाते हैं जिनमें अत्युक्ति एवं अतिशयोक्ति का समावेश होता है। फिर भी ये अभिलेख अनिश्चय से निश्चय की ओर ले जाने में सहायक होते हैं। इनमें शासकों की विरूदावली से उनकी शक्ति का परिचय होता है। उनके समकालीन शासकों का विवरण प्राप्त होता है। उनकी विजय-यात्राओं पर प्रकाश पड़ता है। अन्य राजाओं से उनके सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं। राजवंशों के क्रमशः उत्थान तथा कालान्तर में पतन, पतन के कारण एवं परिस्थितियों जैसे विषय उद्घाटित होते हैं। राज्यपाल इत्यादि जैसे प्रशासनिक एवं अन्य प्रकार के अधिकारियों, शासन प्रणाली, प्रान्तों का स्वरूप एवं विभाजन, राजकीय कर जैसे विषयों का उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ सामाजिक तथ्यों को भी अभिलेख प्रस्तुत करते हैं। लोगों की धार्मिक आस्था एवं विश्वास पर इनसे ज्ञान होता है। अभिलेखों में प्रायः देखा गया है कि शासक का व्यक्तिगत धार्मिक मत लोगों की आस्था को न तो प्रभावित करता है न ही उनसे टकराव होता है। मंदिरों, विहारों, प्रतिमाओं के साथ-साथ अट्टालिका युक्त भवनों का चित्रण, वास्तुकला, संगीत इत्यादि कलाओं, बुनाई के साथ-साथ लेखन कला का परिज्ञान अभिलेखों से होता है। अभिलेख अपने वर्णनों से जाने-अनजाने ही ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत कर देते हैं। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, पुलकेशिन (द्वितीय) का एहोल अभिलेख इत्यादि इतिहास निर्माण की दृष्टि महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करा देते हैं।

पाण्डुलिपियाँ विभिन्न प्रकार के कागज, भूर्जपत्र, ताड़पत्र इत्यादि पर लिखित रचनाएँ होती हैं। समय-समय पर इनका पुनर्लेखन होता रहता है। ये अधिकांशतः पुस्तक के रूप में होती है। पुनः पुनः लेखन के कारण इनका मूल रूप परिवर्तित हो जाता है। लेखन-सामग्री के विनाश-शील अतः सीमित समय का होने के कारण उनसे इतिहास निर्माण में अपेक्षाकृत कम सहायता प्राप्त होती है। पाण्डुलिपि की मूल प्रति की प्राप्ति कठिनाई से नहीं के बराबर ही होती है। प्रथम प्रतिलिपि तथा अवान्तर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतिलिपियाँ ही प्राप्त होती हैं। प्रथम प्रतिलिपि में मूल पाठ के प्रारम्भ में 'प' लिखा गया होता है। तत्पश्चात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ इत्यादि किसी भी संख्या की प्रतिलिपि के प्रारम्भ में 'द' वर्ण लिखा गया होता है। प्रतिलिपि के समकालीन प्रचलित चित्र-शैली के इनसे आवश्यक सूत्र प्राप्त हो जाते हैं।

सिक्के एवं मुद्रायें इतिहास-निर्माण में एक अन्य महत्वपूर्ण साधन हैं। मुद्राओं का प्रारम्भिक स्वरूप प्रायः अज्ञात है। व्यापारियों के उपयोग के लिए इनकी रचना की गई होगी। प्राचीनतम रूप में व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान के साथ होता था। आदान-प्रदान पूर्ण रूप से सुविधा-जनक माध्यम नहीं रहा होगा। अतः ऐसे पदार्थों को माध्यम बनाया गया जो विभिन्न पक्षों को मान्य रहा। यह माध्यम किसी वस्तु के रूप में था। कोई बर्तन, प्रस्तर के हथियार, पशु इत्यादि विनिमय का माध्यम थे। तत्पश्चात् धातु को विनिमय का साधन बनाया गया। ये धातुएँ स्वर्ण, रजत, अन्य धातु के टुकड़े, (सोने के हार) निष्क आभूषण इत्यादि थे। कालान्तर में धातु के चिह्नित टुकड़ों का प्रयोग प्रचार में आया। भारत में प्राचीनतम मुद्राएँ कार्षापण हैं। ये पण के नाम से जानी जाती थीं। कर्ष अर्थात् बीजों के माध्यम से तोले जाने के कारण ये कार्षापण कहलायी। ई०पू० प्रथम शताब्दी के नानाघाट अभिलेख में इस का 'कहापन' के नाम से वर्णन किया गया है। इनका कोई निश्चित आकार निर्धारित नहीं था। ये लम्बी, छोटी छड़ जैसी चपटी, गोल, पंचकोणीय, षट्कोणीय प्रभृति आकृति में प्राप्त होते हैं। ये पतले, छोटे तथा मोटे किसी भी आकार के होते थे। ये धातु के टुकड़े साँचे में ढाले गए होते थे। गर्म धातु के ठप्पे लगाकर इन्हें चिह्नित किया जाता था। पहचान की दृष्टि से चिह्नों से चिह्नित किया जाता था। इनके मुख्य भाग पर अनेक चिह्नों (लगभग प्रायः पाँच) का समूह होता था। परन्तु उनके पृष्ठभाग पर कम चिह्न होते थे। इनमें सामान्य धार्मिक-चिह्न, पशु-पक्षियों के चिह्न, आयुधों के चिह्न, ज्यामितीय आकृतियाँ तथा नदी इत्यादि के चिह्न प्राप्त होते हैं। इन चिह्नों का मुद्रण मुद्रा की रचना करने वाली संस्था-निगम, श्रेणी अथवा संघ और शासक द्वारा अंकन के साथ होता था। व्यापारियों की श्रेणियों अथवा संघों द्वारा व्यापार के सन्दर्भ में इनका उपयोग होता था। शासक मुख्यतया राजकीय आदेशों को प्रमाणित करने के लिए भी इनका उपयोग करते थे। राजकीय मुद्राएँ दान-लेखों के साथ बहुतायत के साथ देखी जा सकती है। सिन्धु घाटी से प्राप्त मुद्राएँ मुख्यतया व्यापारिक श्रेणियों अथवा उनके व्यक्तिगत प्रयोग के लिए सम्भावित की जाती थी। मौर्य-कालीन मुद्राओं पर 'सुमेरु' पर्वत चिह्नित प्राप्त होता है। मालव, शक, कुषाण, यौधेय इत्यादि गणराज्यों की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुद्राओं पर उनके नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। शकों ने सर्वप्रथम मुद्राओं पर तिथ्यंकन की परम्परा को प्रारम्भ किया। गुप्त काल में मुद्रा के लिए 'दिनार' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। यह नाम यूनानी स्वर्ण मुद्रा 'दिनरियस' नाम से प्रभावित प्रतीत होता है। लगभग दसवीं शताब्दी ईस्वी का यह नाम प्रचलित रहा। इनके साथ-साथ कलचुरि तथा चन्देल नरेशों के द्वारा 'द्रम' नाम का प्रयोग भी होता है। कालान्तर में यही द्रम से मुद्रा बन गया। मासक, काकिनी इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी इस संदर्भ में मिलता है। मुद्राओं के लिए प्रयुक्त धातु सम्बन्धित राजवंश की आर्थिक स्मृद्धि की ओर संकेत करती हैं। स्वभाविक है स्वर्ण मुद्रा राज्य की अतिशय समृद्धि की सूचक है। स्वर्ण-मुद्राओं में स्वर्ण की मात्रा की शुद्धता भिन्न-भिन्न प्राप्त होती है। पूर्व-मध्य युग में स्वर्ण-मुद्राओं का प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया और चाँदी की मुद्राओं का प्रयोग लोकप्रिय हो गया। कुमारगुप्त के समय में प्राचीन चाँदी का पत्र चढ़ी (चाँदी के लेप युक्त) ताम्रमुद्रा भी प्राप्त होती है। यह राजकोष के क्रमशः क्षीण होने का संकेत करती है। मुद्राओं में कौड़ी तक के रूप में प्रयोग उपलब्ध होता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन	5
अथ श्री	7
1. अभिलेखों के अध्ययन का महत्त्व	17
2. लिपि–एक परिचय	23
3. भारतीय प्राचीन लिपियों का परिचय	27
4. लिपि रूप	39
5. ब्राह्मी लिपि पढ़े जाने का इतिहास	58
6. ब्राह्मी लिपि में परिवर्तन–कारण एवं दिशाएँ	68
7. अभिलेखों के प्रकार	71
8. लेखन का व्यवसाय	76
9. लेखन–सामग्री	79
10. लेखों का संरक्षण एवं पुस्तकालय	84
11. काल–निर्धारण की पद्धति एवं मुख्य संवत्	88
12. अशोक का गिरनार शिलालेख (प्रथम)	100
13. अशोक का सारनाथ लघु शिलालेख	101
14. रुद्रदाम्न का गिरिनगर शिलालेख	112
15. समुद्रगुप्त का एरण स्तम्भ अभिलेख	119
16. चन्द्र का मेहरौली लोह–स्तम्भ अभिलेख	123
17. विग्रहराज वीसलदेव का दिल्ली स्तम्भ लेख	127
परिशिष्ट	
परिशिष्ट–A	
अभिलेखों की भाषा	131

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिशिष्ट-B
बृहत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि 137
परिशिष्ट-C
अशोक-कालीन ब्राह्मी लिपि के वर्णों पर स्वर-चिह्नों का प्रयोग 141

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

1
अभिलेखों के अध्ययन का महत्त्व

इतिहास-लेखन में प्रामाणिक एवं व्यवस्थित रूप देने के लिए अभिलेख अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके अध्ययन से अनेक सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। अभिलेख विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित सामग्रियों के ज्ञान में सर्वोपरि हैं। वह एक ऐसी निधि है जिससे समस्त प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है। वे अपने समकालीन इतिहास, समाज, धार्मिक-स्थिति, आर्थिक-स्थिति तथा सहित्यिक-स्तर के जीवन्त तथा अधिकारिक ज्ञान के साधन हैं। इनसे राजाओं के कार्यकलापों जैसे सैनिक-अभियान, शासन की इकाइयां, पड़ोसी राजाओं से परस्पर सम्बन्ध, कर-व्यवस्था, दण्ड-नीति इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। व्यापारिक/श्रेणी-संगठनों, व्यापार-व्यवस्था, सामाजिक-व्यवस्था, प्रचलित परम्पराओं, कला एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। इनमें मूल्यांकन में सतर्क रह कर विषय-वस्तु को जाना जा सकता है एवं विषय की उपयोगिता को जानने में सहायता प्राप्त होती है। ये शिलाओं, स्तम्भों, मूर्त्तियों, स्मारकों, गुहा-भित्तियों, धातु-पत्रों, मुद्राओं इत्यादि पर उत्कीर्ण उपलब्ध होते हैं। इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थानों, धार्मिक महत्त्व के स्थानों, व्यापारिक एवं यात्रा मार्गों पर तथा राज्य की सीमाओं पर प्रमुख रूप से लिखवाया जाता था जिससे अधिकांश लोगों तक वाञ्छनीय तथ्य पहुँच सकें। उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर सिन्धु-सरस्वती सभ्यता से सम्बन्धित लेख भारत में प्राचीनतम उदाहरण माने जाते हैं। अपठनीय होने के कारण इनकी विषय-वस्तु अज्ञात ही है।

इतिहास ज्ञान

अभिलेख इतिहास-ज्ञान के मुख्य एवं उपयोगी स्त्रोत हैं। पुरातत्व की अन्य सामग्रियों के अध्ययन की अपेक्षा अभिलेखों से अधिक महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। विभिन्न शासकों जैसे अशोक, कनिष्क, खारवेल, शातकर्णि, रूद्रदामन, समुद्रगुप्त, पुलकेशिन (द्वितीय) आदि शासकों की उपलब्धियां यश तथा शक्ति का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिज्ञान अभिलेखों से ही सम्भव है। अशोक के लेखों से ही मौर्य-साम्राज्य की विशेषताओं का ज्ञान होता है। उसके लेखों के विस्तृत भू-भाग में उपलब्ध होना उसके साम्राज्य के विस्तार का परिचायक हैं। अशोक के मास्की (आन्ध्र प्रदेश) के लेख से ही ज्ञात हुआ कि प्रियदर्शी नामक कोई भिन्न राजा न होकर वह अशोक ही है। खारवेल नामक राजा का सम्पूर्ण वर्णन उड़ीसा के हाथीगुम्फा लेख से प्राप्त होता है। यदि यह अभिलेख न होता तो उसका जीवन-वृत्तांत लुप्त ही रहता। कनिष्क के कुर्रम तथा सारनाथ से प्राप्त लेख उसके राज्य को पेशावर से वाराणसी तक विस्तृत होने को प्रमाणित करते हैं। अभिलेखों के अध्ययन से विभिन्न राजवंशों की वंश-परम्परा का ज्ञान होता हैं। शासक अपने लेखों में अपने सम्पूर्ण वंश-वृक्ष का वर्णन करते हैं। ईसा पूर्व के लेखों में ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं होती। प्रायः अभिलेखों में सम्बन्धित शासक की विजय-यात्रा, युद्ध-गाथा, विजय का वृत्तान्त तथा शासकों से पारस्परिक सम्बन्धों एवं अन्य उपलब्धियों का वर्णन प्राप्त होता है। अभिलेखों को राज्य की सीमा पर खुदवाने का विशेषा महत्त्व है। इनमें की गयी आज्ञा अथवा घोषणा प्रजा के लिंए उपयुक्त होती थी साथ ही सीमा-पार स्थित शासकों एवं लोगों के लिए भी महत्त्वपूर्ण थीं जो उनके वहां तक प्रभाव को सूचित करते हैं। इनमें संरक्षक शासक के वर्णन के साथ-साथ समकालिन शासकों के नाम भी प्रसंगवश प्राप्त होते हैं।

अभिलेख प्राचीन काल में प्रचलित शासन-पद्धति का ज्ञान भी कराते हैं एवं पदाधिकारियों की स्थिति पर संकेत करते हैं। ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी ईस्वी तक लगभग सात सौ साल के विभिन्न अभिलेखों, प्रशस्तियों एवं मुद्रा-लेखों से प्राचीन काल में प्रचलित राजतन्त्र एवं प्रजातन्त्र के रूप में प्रचलित शासन-पद्धतियों की स्थिति का ज्ञान होता है। प्रजातन्त्र गण अथवा संघ के नाम से जाने जाते थे। संघ शासन राजतन्त्र के साथ भी प्रचलित रहा। उत्तरी बिहार का वज्जि-संघ एक प्रसिद्ध प्रजातन्त्र था। पदवियों के सन्दर्भ में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक इत्यादि महान् पदवियों को धारण नहीं करते। शक-पह्लव नरेशों के सिक्कों पर यूनानी पदवी "वैसिलियस वैसिलियन" प्राकृत में 'महरजस रजरजस महतस' प्राप्त होती है। समुद्रगुप्त ने "शाहानुशाही" पदवी का उल्लेख किया है। पश्चिमी भारत में "क्षत्रप" एवं "महाक्षत्रप" जैसी स्वतन्त्र पदवी का वर्णन प्राप्त होता है। जहाँ चन्द्रगुप्त प्रथम ने "महाराजाधिराज" की उपाधि धारण की, वहीं चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसके साथ-साथ "परम भागवत" की (धर्मिक) उपाधि भी धारण की। कालान्तर में "परमभट्टारक महाराजाधिराज" "परमभट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर" का उल्लेख भी प्राप्त होता है। बाद में छोटे-छोटे राजाओं ने भी बड़ी-बड़ी उपाधियां धारण करनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रारम्भ कर दी थीं। समस्त राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त होता था। जिन्हें "भुक्ति" कहते थे। इसकी छोटी इकाई को "विषय" कहा जाता था। शासन के प्रबन्धन को सुचाक ढंग से चलाने के लिए "विषयों" को भी उपविभागों बांटा जाता था जो "ग्राम" कहलाते थे। राजा मन्त्रिपरिषद् की सलाह से शासन करता था। अशोक ने मन्त्रि-परिषद् को "परिषद्" के रूप में उल्लिखित किया है। राजा का आदर्श होता था कि 'प्रजा बच्चों के समान है, सबको लोक तथा परलोक में सुख और शान्ति प्राप्त हो' (अशोक)। राजा प्रजा के हित-चिन्तन में लगे होते थे। रूद्रदामन मन्त्रियों के विरोध होते हुए भी प्रजा के सुख एवं भलाई के लिए निजी धन से बांध बनवाता है। राजा भी विभिन्न क्षेत्रों के लिए योग्य शासकों के लिए चिन्तित रहते थे। कर-व्यवस्था का विषद् वर्णन अधिकांशतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा स्मृति-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अधिकतर दान-सम्बन्धी लेख कर की चर्चा करते हैं। छठी शताब्दी ई० के पश्चात् ही इनका प्रचुर वर्णन मिलता है। विभिन्न दान-पत्रों में दान-ग्राही कर से मुक्त दिखाई देता है। दान-क्षेत्र का कर भी दान-ग्राही को ही देय होता था। विभिन्न करों के नाम यथा-प्रसंग उपलब्ध होते हैं पर उनकी मात्रा का ज्ञान स्पष्ट नहीं होता। अर्थशास्त्र पैदावार का छठा भाग भूमि कर के रूप में निर्धारित करता है। मौर्य-काल में कर का अनुपात सम्भवतः यही रहा होगा। केवल रूम्मनदेई (नेपाल) में अशोक ने कर 'अठभागिये' अर्थात् आठवां भाग परिगणित किया है। रूद्रदामन के उल्लेख के अनुसार वह प्रजा को कर एवं विष्टी (बेगारी) से पीड़ित नहीं करता था। दसवीं शताब्दी तक कर-संग्रह करने वाले को "षष्ठाधिकृत" अर्थात् छठे भाग का अधिकारी के रूप में उल्लिखित करने से प्रतीत होता है कि पैदावार का छठा भाग ही राजकीय कर होता था।

सामाजिक स्थिति का ज्ञान

भारतीय समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था पर अभिलेखों की विषयवस्तु वर्णाश्रम का वर्णन करना नहीं रहा। केवल दान अथवा शासन के सन्दर्भ में ही वर्ण एवं जाति का उल्लेख प्राप्त है। उदाहरण-स्वरूप, अशोक अपने लेखों में दान देने, सद्व्यवहार तथा दर्शन करने के सन्दर्भ में ब्राह्मणों तथा श्रमणों का उल्लेख करता है। सातवाहन गर्व से अपने को ब्राह्मण कहते हैं। इसी प्रकार अनेकशः दान ग्रहण करने से सम्बन्धित वर्णन में क्षत्रिय ब्राह्मण का उल्लेख प्राप्त होता है। युद्ध एवं अग्रहार के प्रसंग में क्षत्रिय नाम उद्घृत होता है। इन्दौर से प्राप्त एक उदाहरण में ब्राह्मण को क्षत्रिय-वंशी अचलवर्मा तथा भ्रकुण्ठ सिंह दान देने वाले नाम हैं जो वैश्यवृत्ति (व्यापार-कार्य) से जीवन-यापन करते हैं। इस प्रकार यहां तीनों वर्णों का उल्लेख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्त होता है। सम्भवतः सातवीं शताब्दी ई० में वर्णाश्रम व्यवस्था ढीली पड़ने लगी। ईस्वी संवत् के पूर्व-काल से ही विदेशी आक्रमणकारियों के भारतीय समाज में अन्तर्भूत हो जाने के कारण भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रचलन में जटिलताएं आनी प्रारम्भ हो गयी थीं। इसी लिए शासक का एक कर्त्तव्य बताया गया है कि वे समाज को समुचित रूप से चलाने के लिए वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें। जो दान-पत्रों में "ब्राह्मण-चण्डाल- पर्यन्तं" शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस समय तक जातियों का कार्य एवं स्थान के अनुसार भेद हो चुका था। अल्बेरूनी ने सोलह, कल्हण ने चौसठ जातियों को पांच वर्णों के अन्तर्गत परिगणित किया है। जहां पहले अपनी विद्या के कारण ब्राह्मण सर्व-मान्य एवं अग्रणी थे वे ही उपजातियों तथा जीविका के साधनों के वशीभूत हो कर अपनी श्रेष्ठता को स्थिर नहीं रख पाये। अब समाज में क्षत्रिय अग्रगण्य हो गए और ब्राह्मण उनके निर्देशानुसार कार्य करने लगे। विदेशियों के आ जाने से ब्राह्मण देशान्तर-गमन करने लगे। प्रशस्तियों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है पर स्मृतियाँ इस विषय पर मौन हैं। समाज में क्षत्रिय शासन एवं शिक्षा के कारण आदरणीय थे। वे ही शासक थे तथा समाज के रक्षक भी थे। वैश्य के लिए प्रायः समस्त लेखों में 'वणिक्' शब्द का प्रयोग प्राप्त हाता है। व्यापार के अनुसार वणिक् श्रेणियों में विभाजित थे। विदेश जाने वाले वणिक् 'सार्थवाह' कहे जाते थे। वणिक् सामग्री अथवा तौल के अनुसार 'कर' देते थे। श्रेणी बैंक का कार्य भी करती थी। अभिलेखों में शूद्रवर्ण का ऐसा वर्णन प्राप्त नहीं होता जैसा स्मृतियों में है। (शूद्र) दास के प्रति सम्यक् व्यवहार का अशोक अपने लेखों में आदेश देता है। बहुत बाद के अभिलेखों में आश्रम-व्यवस्था की चर्चा प्राप्त होती है। यह विभिन्न प्रसंगों में उपलब्ध है जैसे- ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है; गृहस्थ का होम एवं तर्पण से सम्बन्ध, परिपक्व अवस्था में राजा द्वारा जंगल में चले जाना, पुत्र इत्यादि को राज्यभार सौंप कर सद्गति पाने हेतु तपस्या करने चले जाना, इत्यादि। इसी प्रकार सातवीं शताब्दी ई० के बाद के लेखों में जातकर्म, नामकरण, विवाह तथा श्राद्ध संस्कारों का उल्लेख मिलता है। केवल राजघरानों में ही बहुपत्नी होने का वर्णन है। मध्यदेश तथा राजपुताना के लेखों में बहुपत्नी के उदाहरण देखे गए हैं। विद्वान् ब्राह्मणों, शिक्षा-संस्थाओं, मन्दिरों तथा विद्यालयों को दान के रूप ग्राम अथवा धन में दिया जाता था।

धार्मिक स्थिति का ज्ञान

अभिलेखों में धार्मिक भावना का प्रचुर संकेत एवं उल्लेख प्राप्त होता है। अशोक ने सदाचार और धार्मिक सिद्धान्तों को आधार बना कर लेखों की उत्कीर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करवाया। अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी एवं संरक्षक माना जाता है। वह सारनाथ के स्तम्भ लेख में स्पष्ट करता है कि संघ की एकता के पक्ष में होने के कारण विभेद डालने वाले भिक्षु को संघ से बहिष्कृत कर सकता है। अशोक के पश्चात् बौद्ध धर्म राज्याश्रय प्राप्त नहीं कर सका। परन्तु बौद्ध-धर्म के अनेक अनुयायी हो चुके थे। स्तूप निर्माण और उनकी पूजा का प्रचलन पर्याप्त रूप से था। स्तूप के चारों ओर तोरण, वेदिका आदि का निर्माण होता था। इन पर लेख भी उत्कीर्ण करवाए जाते थे। बुद्ध की मूर्तियों की स्थापना होती थी। उनकी पादपीठ पर लेख लिखवाए जाते थे। उदयगिरि के गुहालेखों से जैन धर्म के प्रचार का वर्णन प्राप्त होता है। हाथीगुम्फा लेख खारवेल के जैन धर्म में विश्वास को प्रकट करता है। काफी लम्बे समय तक जैन प्रतिमाओं की स्थापना की एवं उनकी आधार-शिलाओं पर लेख उत्कीर्ण प्राप्त होता हैं।

तीर्थंकरों में महावीर, पार्श्वनाथ तथा शांतिनाथ की पूजा मुख्यतः प्रचलित दृष्टिगोचर होती है। अशोक के दिवंगत होते ही भागवत धर्म का पुनरूत्थान हो गया। अश्वमेघ का पुनः आरम्भ हो गया। गरुड़-ध्वज स्थापित किया जाने लगा। गुप्त-नरेशों का राजचिह्न विष्णु का वाहन गरुड़ था। बारहवीं शताब्दी तक 'नमो नारायणाय', 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय', 'वासुदेव भट्टारक', 'ओं नमो माधवाय', 'ओं नमो विष्णवे' जैसी उक्तियों से अभिलेखों का प्रारम्भ होता रहा। कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव 'ओइशो' (शिव) के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं। वाकाटक, भारशिव, गुप्त नरेशों ने भी शिव के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए 'परम माहेश्वर', 'अर्द्धनारीश्वर', 'महादेवः', 'शम्भु' इत्यादि का प्रयोग किया है। शैव मत का दो धाराओं-पाशुपत और कापालिक-का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य पूजा का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। कनिष्क ने 'मित्र' (सूर्य), 'मीरो' (मिहिर-सूर्य) अपनी मुद्राओं में अंकित कराये। गुप्त युग में सूर्य की उपासना भी प्रमुखता से प्रचलित थी। कुमारगुप्त (प्रथम) के मन्दसौर अभिलेख, स्कन्दगुप्त का इन्दौर अभिलेखों में सूर्य की बहुत सुन्दर स्तुति के प्रमुख उदाहरण हैं। ये सब वर्णन उस समय के धार्मिक विश्वास को प्रकट करते हैं। कहीं भी किसी के विश्वास को आहत करते हुए वर्णन प्राप्त नहीं होते।

साहित्यिक ज्ञान

अभिलेख अपने समय के कवियों का साहित्यिक लाघव के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें साहित्यिक विधाओं की चर्चा नहीं है। रुद्रदामन का अमिलेख वैदर्भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रीति, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति चम्पू काव्य के उदाहरण हैं। इनके लेखक मात्र लेखक नहीं थे वे राज्य के पदाधिकारी भी थे। गुप्त-काल में ही काव्य-लाघव प्रदर्थित करने वाले उदाहरण सामने आते हैं। कुमार गुप्त (प्रथम) का मन्दसौर अभिलेख, स्कन्दगुप्त की जूनागढ़ प्रशस्ति, मन्दसौर से प्राप्त विभिन्न प्रशास्तियां लेखकों के साहित्यिक ज्ञान को प्रकट करते हैं। विभिन्न छन्दों में बद्ध रचनाएं तत्कालीन लेखकों, हरिषेण, वत्सभट्टि, वीरसेन, रविकीर्ति, रवि-शान्ति इत्यादि को कमतर सिद्ध नहीं करती। अनुष्टुप् जैसे सरल छन्द से लेकर ये कालिदास, भारवि आदि कवियों से स्पर्द्धा करते दिखाई देते हैं। अलंकारों एवं छन्दों के प्रयोग में ये सभी पारंगत हैं। विशेष रूप से कहा जा सकता है कि वर्णन के सीमित क्षेत्र में भी अपने विशेष ज्ञान का प्रदर्शन करने में इन्होंने कहीं कोई कसर नहीं छोड़ी।

आर्थिक-विवरण

अभिलेखों में प्रशस्ति-लेखक आर्थिक-स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं। विभिन्न प्रसंगों में भूमि और धन का दान तत्कालीन लोगों की सम्पन्नता के परिचायक हैं। नरेश आर्थिक-स्थिति को सुदृढ़ करते हुए सिक्के जारी करते थे। गुप्त-काल तक अर्थ-व्यवस्था उन्नत हो चुकी थी। विभिन्न शासकों द्वारा बांध बंधवाना प्रजा के लिए सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था करने का परिचायक है। अशोक द्वारा उन स्थानों पर पेड़-पौधे लगवाना जहां वे नहीं हैं उसके पर्यावरण एवं लोगों के लिए सुविधाएँ प्रदान करने का सूचक है। भूमि-दान उसे माप कर ही किया जाता था। एक पद्धति के अनुसार भूमि माप कर दान देने का उल्लेख है। भूमि-मापन के उपकरण पादावर्त, हल, नल अथवा नालक थे। अन्य पद्धतियों में किसी क्षेत्र में बीज बोने के आधार पर माप किया जाता था। इस पद्धति में पाटक, द्रोण, कुल्यवाप आदि आधार थे। व्यापार-सम्बन्धी समस्त कार्यों का संचालन "श्रेणी" नामक संस्था करती थी जो सर्व-सहमति से कार्य करती थी। यह बैंक का कार्य भी करती थी। "कर" निश्चित करने के लिए विशेष नियम निर्धारित थे। वह वस्तुओं के प्रकार, स्तर एवं मात्रा के आधार पर लगाया जाता था। विभिन्न परिस्थितियों में अस्थायी कर भी लगाए जाने का प्रावधान था। आय का छठा भाग अधिकांशतः मान्य कर था। बंजर भूमि को कृषि-योग्य बनाने वाले पर कर नहीं लगता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

2
लिपि–एक परिचय

संसार में लोग अपने देश, काल और परिस्थिति के अनुसार उच्चारित ध्वनियों के अनुसार प्रतिनिधि चिह्नों का प्रयोग करते हैं। ये चिह्न ही लिपि के रूप में जाने जाते हैं। मानव के विकास के साथ-साथ ध्वनियों में परिवर्तन होता रहा है। इसी प्रकार उनके प्रतिनिधि चिह्नों में भी परिवर्तन होता जाता है। प्रारम्भ में इन ध्वनि-चिह्नों की संख्या अधिक होती है। प्रयोग के आधिक्य तथा प्रयत्न-लाघव के कारण उनकी रूप-रचना परिवर्तित होती रहती है। साथ ही उनके चिह्नों की संख्या भी कम होती जाती है। भाषा लिपि के बिना तथा लिपि भाषा के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते। इस प्रकार चिह्न अर्थात् लिपि और भाषा एक-दूसरे के अभिन्न अंग हो जाते हैं। भाषा विचारों के विस्तृत होने के साथ असिमित हो जाती पर उच्चारण के आधार पर लिपि के चिह्नों की संख्या क्रमशः संकुचित होती जाती है। लिपि के चिह्न वर्णमाला के रूप में प्रचलित होते है।

लिपि की उत्पत्ति के विषय में प्रमुख सिद्धान्त है ईश्वर प्रदत्त। सभी कार्य ईश्वर के द्वारा उत्पन्न हुए इसी आधार पर लिपि की उत्पत्ति भी ईश्वर द्वारा की गई मानी जाती है। मनुष्य की सोच से आगे की स्थिति ईश्वर के अधीन मानी जाती है। अतः प्रत्येक देश के निवासी अपने किसी न किसी देवता को ही लिपि का जनक मानते हैं,

देश	लिपि	जनक-देवता	काल
मिस्र	हायरोग्लिफिस	थॉठ	ई०पू०28वी शताब्दी
मेसोपोटामिया	कीलाक्षर	नेबू	ई०पू०25वी शताब्दी
चीन	चीनी	वेनचांग	ई०पू०18वी शताब्दी
इजराइल	हिब्रू	जेहोवा	ई०पू०13वी शताब्दी
फिनीशिया	उत्तरी सेमेटिक	कैडमस	ई०पू०12वी शताब्दी
ग्रीस	ग्रीस	हर्मिस	ई०पू०11वी शताब्दी
भारत	ब्राह्मी	ब्रह्मा	ई०पू०6वी शताब्दी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देश	लिपि	जनक-देवता	काल
रोम	रोमन	मर्करी	ई०पू०5वी शताब्दी
अरब	अरबी (दक्षिणी सेमेटिक)	अल्लाह/आदम	आदिकाल
भारत	खरोष्ठी (ऋषभ ओष्ठी)	ऋषभदेव	आदिकाल

लिपियों के अध्ययन से उनके प्रारम्भिक रूपों की कल्पना होने लगी। वर्गीकरण के आधार पर उनके विकास-शील स्वरूप की सम्भावना की गई। क्रमागत विकास की शृंखला में लिपि का विकास-क्रम निम्नलिखित रूप से स्वीकार किया आता है–

1. भ्रूण लिपि– भ्रूर्ण लिपि चित्रों ,रेखाओं आदि का मिश्रण है। वह पूर्ण लिपि नहीं थी पर अभिव्यक्ति के लिए इसके प्रयोग की सम्भावना की जाती है। ये काल्पनिक रूप हैं। इनका उद्देश्य स्पष्ट नहीं है। ये धार्मिक एवं तान्त्रिक चिह्न की भान्ति प्रतीत होते हैं। सभ्यताओं के विकासशील होने के पूर्व के समय में आदिमानव द्वारा इस लिपि का प्रयोग किया जाता था। यह प्रागैतिहासिक काल के लेखन के संकेत हैं। गुफाओं में इस प्रकार की लिपि देखी जा सकती है।

2. चित्रात्मक लिपि– आदिकाल में मनुष्य ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए चित्रों का आश्रय लिया। चित्र के अर्थ किसी वस्तु-विशेष तक सीमित थे। यद्यपि इन चित्रों के अर्थ रूढ़ नहीं थे। पूरे वाक्य को एक चित्र से व्यक्त किया जाता था। यह चित्रात्मक लिपि कहलाती है। आधुनिक काल के यातायात के चिह्न चित्रात्मक लिपि का वर्तमान-कालिक उदाहरण है।

3. सूत्रात्मक लिपि– रस्सी में गांठें डालकर संदेश-प्रेषण की पद्धति सूत्रात्मक लिपि कहलाती है। प्राचीनकाल में इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होता था। अफ्रिका, पेरू तथा चीन में इसके प्रयोग के प्रमाण उपलब्ध हैं। अन्य क्षेत्रों में भी इस लिपि/लेखन पद्धति युक्त संकेतों के प्रचलन की संभावना है पर उनके प्रमाणों की अनुपस्थिति इस मत को पुष्ट नहीं करती। पेरू निवासी इन्का जाति के रेड इण्डियनों द्वारा नौवी शताब्दी ई० में इसके प्रयोग के उदाहरण मिल जाते हैं। इसे कुई-पल के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति में विभिन्न रंगों की डोरी अथवा रस्सी पर विभिन्न प्रकार की भिन्न-भिन्न संख्याओं की गांठें का प्रयोग किया जाता है। हर स्थिति में इनका रंग प्रकार गांठें की संख्या के आधार पर अलग-अलग अर्थ होता है। आधुनिक समय में स्काऊट में इसका प्रयोग किया जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

4. भावात्मक अथवा संकेतात्मक लिपि–दैनिक उपयोग के चिह्नों के प्रयोग से अभिव्यक्ति के माध्यम को भावात्मक लिपि कहते हैं। इस पद्धति में एक ही चिह्न चित्र के रुप में आ गया था। ये चित्र एक सम्पूर्ण भाव को प्रकट करते हैं। इस में प्रस्तुत चित्र का भावार्थ निश्चय कर लिया गया फिर भी उनके एकाधिक भाव निर्धारित हो गए, यथा सूर्य का चित्र पहले सूर्य का ही अर्थ प्रकट करता था। कालान्तर में सूर्य के उगने, दिन होने, गर्मी होने, प्रकाश होने इत्यादि भावों को प्रकट करना सूर्य के चित्र में निहित हो गया। इस पद्धति से भाव का संकेत ग्रहण होता है, अतः इसे संकेतात्मक लिपि भी कहते हैं। लगभग प्रत्येक प्राचीन सभ्यता में इस प्रकार की लिपि का उपयोग प्राप्त होता है।

5. ध्वन्यात्मक लिपि– उच्चारित ध्वनि के लिए चिह्न विशेष के प्रयोग से लिखी जाने वाली लिपि ध्वन्यात्मक लिपि कहलाती हैं। स्वरों तथा व्यंजनों के मिश्रण के साथ इसका प्रयोग होता है माना जाता है कि मिस्त्र के निवासियों ने अट्ठाइसवी शताब्दी ई०पू० में इस प्रकार की लिपि का निर्माण कर लिया था। इस लिपि में 24 अक्षर थे। वे सभी व्यंजन थे। इन में स्वरों का प्रयोग नहीं था। इनका प्रयोग अधिक नहीं हुआ। फिनीशिया में लगभग पन्द्रह शताब्दी ई०पू० एक लिपि का उद्‌गम हुआ। इसे उत्तरी सेमेटिक लिपि कहते हैं। इसमें 22 व्यंजन एवं स्वर–वर्णों का निर्माण किया गया। आजकल भारत, चीन, जापान इत्यादि कुछ देशों को छोड़कर लगभग सभी देश फिनीशिया की लिपि के परिवर्तित, विकसित एवं परिवद्धित रूप का प्रयोग कर रहे हैं। इस प्रकार की लिपि में केवल ध्वनि को प्रकट किया जाता है। इन ध्वनियों के आधार पर किसी वस्तु अथवा भाव का सम्बोधन व्यक्त किया जाता है।

समय तथा स्थान के भेद से ध्वन्यात्मक लिपि के तीन भेद प्राप्त होते हैं–

अक्षरात्मक, वर्णात्मक एवं रेखाक्षरात्मक लिपियाँ।

1. अक्षरात्मक लिपि अक्षर को व्यक्त करने वाली लिपि है। यह अर्धाक्षरी लिपि भी कहलाती है। भारतीय लिपियाँ अर्ध–अक्षरात्मक लिपियाँ हैं। इनमें स्वर तथा व्यंजन भिन्न–भिन्न होते हैं। स्वरों एवं व्यंजनों–दोनों के साथ मिलाने से अक्षर की रचना होती है। इसलिए इसे अर्धाक्षरी लिपि कहते हैं। अरबी, फारसी भी अंर्ध अक्षरात्मक लिपियाँ हैं।

2. वर्णात्मक लिपि– ध्वनि की प्रत्येक इकाई के लिए प्रयुक्त प्रथक् चिह्न वर्णात्मक लिपि कहलाते हैं। अंग्रेजी लिखने के लिए प्रयोग में आने वाली रोमन लिपि वर्णात्मक लिपि कहलाती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

3. रेखाक्षरात्मक लिपि– प्रत्येक शब्द के लिए प्रत्येक ध्वनि के सम्मिलन के लिए रेखाचित्रों को निर्धारित करके बनी लिपियाँ रेखा अक्षर रेखाक्षरात्मक लिपि कहलाती है। चीन तथा जापान की लिपि रेखाक्षरात्मक लिपियाँ हैं। जापान ने वर्णों की संरचना करके अपनी लिपि को अपेक्षाकृत सरल बना लिया है।

वर्तमान काल में उपलब्ध सिन्धु घाटी की लिपि भावात्मक लिपि का एक उदाहरण है। इससे भारतीय अक्षरात्मक लिपि की उत्पत्ति की संभावना व्यक्त की जाती है। सिन्धु घाटी की भाषा के ज्ञात न होने तथा भाषा के साथ पूर्वाग्रह होने के कारण इसकी लिपि को विभिन्न दावों के बावजूद जाना नहीं जा सका है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

3
भारतीय प्राचीन लिपियों का परिचय

सिन्धु घाटी की लिपि का परिचय

सिन्धु घाटी क्षेत्र से प्राप्त लेखन-पद्धति लिपि-विज्ञान के क्षेत्र में एक अद्वितीय और बहुमूल्य उपलब्धि है। यह ऐसे समय में संसार के समक्ष आई जब अन्य प्रचलित भारतीय लिपियों का पूर्ण ज्ञान हो चुका था। अब उनके उद्‌गम में सहायक किसी चित्रात्मक लिपि की अनुपस्थिति एक गम्भीर विचारणीय विषय था। सिन्धु-घाटी क्षेत्र से मुद्राएं प्राप्त होती हैं। ये मुद्राएं लेखों से युक्त हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में इस लिपि के चिह्न सर्वप्रथम अविभाजित पंजाब के प्रान्त हड़प्पा से प्राप्त हुए। बाद में सिन्ध-क्षेत्र के लकराना प्रान्त में मोहनजोदड़ो से और मुद्राएं प्राप्त हुई। इन मुद्राओं को 1922 में जॉन मार्शल ने संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। ये मुद्राएं इतिहास के कांस्य युग से सम्बन्धित मानी जाती हैं। इन मुद्राओं का इस क्षेत्र से प्राप्त होना यह प्रमाणित नहीं करता कि यह लेखन-पद्धति यहीं की मूल रचना है। विद्वानों में इस बात का असमंजस है कि क्या यह एक चित्रात्मक लिपि है अथवा भावात्मक लिपि है अथवा संकेतात्मक लिपि है। यह अभी तक एक अज्ञात भाषा की अज्ञात लेखन-पद्धति है। इसमें छोटे-छोटे लेख प्राप्त होते हैं जिससे इसका पाठन दुरुह है। इस लिपि के पाठन में दीर्घ अभिलेख का अभाव समस्या उत्पन्न करता है। किसी दुभाषिये अभिलेख की अनुपलब्धि इसके पाठन की समस्या को और अधिक कठिनाई में परिवर्तित कर देती है।

सिन्धु-घाटी से प्राप्त लिपि कालान्तर में भारत के पश्चिमी विस्तृत भू-भाग से भी उपलब्ध हुई। अत: अनेक विद्वानों ने इस का नाम सिन्धु-सरस्वती क्षेत्र की लिपि भी प्रस्तुत किया, फिर भी प्रयत्न-लाघव-वश यह सिन्धु-घाटी की लिपि के रूप में ही लोक- प्रचलित है। इस लिपि के पाठन के लिए अनेक विद्वानों के द्वारा प्रयत्न किए गये हैं। उनके प्रयत्न विभिन्न मान्यताओं के आधार पर किए गए हैं। यथा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुमेरियन आधार, द्रविड आधार, आर्यों का आधार इत्यादि। सिन्धु-सरस्वती क्षेत्र में प्रयुक्त लिपि का पढ़ने की दिशा में किए गए समस्त प्रयास कल्पना पर आधारित है सुमेरिया और अन्य चित्रात्मक, भाव-प्रधान इत्यादि लिपियां सफलता- पूर्वक पढ़ ली गई हैं, तथा उनकी भाषाएं भी ज्ञात हैं। वाडेल ने सर्वप्रथम इसको पढ़ने का प्रयास किया। वे इसमें सुमेरियन तथा आर्यों के मध्य समानता को मुख्य आधार मानते हैं। वाडेल ने इस कार्य के लिए वैदिक, पौराणिक इत्यादि देवी-देवताओं के नाम पढ़ने का दावा किया। प्राण नाथ ने भी इसी पद्धति का अनुसरण किया। इसके पाठन का आधार इन्होंने प्राचीन संस्कृत एवं प्राकृत शब्दावली को बनाया है। प्राण नाथ ने इस कार्य की दिशा में इस लिपि का ब्राह्मी-लिपि के कतिपय चिह्नों के साथ ऐक्य स्थापित करने का प्रयत्न भी किया है। शंकरानन्द तथा बी.एम.बरुआ ने अपने अध्ययन का आधार बनाते हुए सिन्धु-सरस्वती लिपि को वर्णात्मक माना है। हरोज्नी ने प्राचीन भारोपीय भाषाओं की प्राचीन शाखा हिट्टाइट भाषा के आधार पर इन लेखों को पढ़ने का दावा किया है। हरोज्नी ने आर्यों एवं ब्राह्मी-लिपि इत्यादि पर आधारित मतों का खण्डन किया है। हेरास ने माना है कि इस लिपि के प्रयोग-कर्त्ता द्रविड़ थे। हेरास ने इसी विचार को आधार मानकर प्राचीन द्रविड़ भाषा के रूप में सिन्धु सभ्यता की लेखन-पद्धति का निर्वचन किया। हेरास ने इस पाठन का सुमेरियन, चित्रात्मक लिपि तथा प्राचीन चीनी लिपि के चिह्नों से तुलनात्मक विवरण भी प्रस्तुत किया है। आस्को परपोला और सीमा परपोला सिन्धु-सरस्वती-लिपि का स्रोत प्राचीन-द्रविड़ माना है। फिलंडर्स पेटरी ने मिस्र की प्राचीन लेखन-पद्धति के आधार पर इस लिपि का निर्वचन किया। उसका मत है कि ये मुद्राएं भावात्मक चिह्नों से युक्त हैं। इनमें केवल अधिकारियों के नाम लिखित हैं। मेरिग्गी ने इस मत में संशोधन किया। उसके अनुसार इस लिपि में केवल भावात्मक चिह्न-मात्र ही नहीं हैं। उसने इसमें भाव-चित्रात्मक चिह्नों का मिश्रण माना है। इसमें कुछ चिह्न भावात्मक हैं तथा अन्य स्वनिम (ध्वनि) पर आधारित हैं। इसमें उल्लिखित शब्दों का तात्पर्य बताने के लिए वे हिट्टाइट शब्दावलि की सहायता लेते हैं। हेवेसी ने सिन्धु-सरस्वती लिपि की ईस्टर द्वीप से प्राप्त लिपि के साथ समानता के आधार पर ईस्टर द्वीप की लिपि को सिन्धु-घाटी लिपि की जनक माना है। सिन्धु-सरस्वती-लिपि के समस्त पठन-कार्य सम्भावनाओं पर आधारित हैं। अत: प्रत्येक मनीषि ने दूसरे के द्वारा प्रस्तावित मत को मान्यता नहीं दी है। अपने कार्यों में गैड, सिडनी स्मिथ, लैंग्डन और हण्टर ने प्रयुक्त लिपि के चिह्नों का संकलन प्रस्तुत करने पर अधिक ध्यान दिया है। इन चिह्नों को संख्यांकित करते हुए ये सभी विद्वान् अपने द्वारा प्रदत्त सम्भावित मत के महत्त्व को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रस्तुत करते हैं। गैड इनको प्राचीन भारोपीय भाषा के रूप में देखते हैं। लैंग्डन ने गैड का ही अनुसरण किया है। हण्टर ने इस लिपि का सम्बन्ध ब्राह्मी लिपि से जोड़ने का प्रयास किया है। इसी सन्दर्भ में स्वर-चिह्नों की पहचान का भी दावा करते हैं। दोनों ही विद्वान् सिन्धु-सरस्वती-लिपि में वर्णों की स्थिति को मान्यता देते हैं। सिडनी स्मिथ इन सभी विचारों से हट कर शब्दों के प्रारम्भिक, मध्य तथा अन्त्य इत्यादि शब्दांशो को पहचानने का उल्लेख करते हैं। डी.सी.सरकार ने भी इसे ब्राह्मी लिपि का पूर्व-रूप मानने पर बल दिया है। रेवरण्ड, कासकेन्नमी, फतह सिंह, पी.आल्टो, डब्लोकर, हेवेसी, न्यूवेरी, एस.आर.राव, नटवर झा, सुधांशु कुमार रे, राजमोहन नाथ, एम.वी.एन. कृष्णराव, एस.एल.वाकणकर, एस.परनवितान, बाँके बिहारी चटर्जी, शंकर हाजरा जैसे असंख्य विद्वानों ने इस लिपि के अध्ययन के क्षेत्र में अपने मत प्रस्तुत किये हैं। परन्तु ये परस्पर मेल नहीं खाते। इस स्थिति में फ्रैडरिक का मत ही उचित प्रतीत होता है कि यह सब शून्य से शून्य की खोज हो रही है।

सिन्धु-घाटी की लिपि के लेखन की दिशा में भी विद्वानों में मत-भिन्नता है कुछ विद्वानों ने मिस्र के लेखों का अनुसरण करते हुए अपना मन्तव्य दिया है कि जिस दिशा में उत्कीर्ण पशु-पक्षी का मुख होता है उसी दिशा से लेखन प्रारम्भ होता है। अन्य विद्वान् इस को दायीं से बायीं ओर लिखी जाने वाली लिपि माना है। परन्तु इसकी विपरीत दिशा में प्रयुक्त चिह्न भी प्राप्त होते हैं। मार्शल इसको उभय-दिशी लिपि मानते हैं। यदि यह मुख्य रूप से चित्रात्मक लिपि स्वीकार करते हैं, और यदि इसका सुमेरिया और मिस्र की लिपि से समानता है तो यह उभय दिशी लिपि ही हो सकती है। प्रस्तुत लेखक के अनुसार मुद्राओं की परीक्षा करने पर देखा गया है कि जिस दिशा से लेखन प्रारम्भ हुआ है। उस दिशा में चिह्न खुले-खुले हैं तथा अन्त में जब स्थान कम रह गया तब बचे चिह्नों को स्थान की कमी के कारण चिह्नों को कम स्थान में एक-दूसरे को सटा कर लिखा है। फिर भी बचे चिह्नों को पंक्ति के नीचे अथवा ऊपर चिह्नित किया गया है। यह प्रवृत्ति मुद्राओं में दोनों ओर प्रयुक्त प्राप्त होती है। अतः सिन्धु लिपि का उभय-दिशी होना ही तर्क-संगत प्रतीत होता है।

सिन्धु-सरस्वती लिपि का अध्ययन करते हुए लिपि-शास्त्रियों ने चिह्नों की गणना की है। इस सन्दर्भ में उन्होंने भिन्न-भिन्न संख्या दी हैं। इसके लिए उन्होंने विभिन्न आधारों को माध्यम बनाया है। उनके अनुसार इसमें-

i. कुछ मूल-चिह्न हैं,
ii. कुछ मिश्रित चिह्न हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

iii. इसमें प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में अतिरिक्त चिह्नों का प्रयोग किया गया है,
iv. विभिन्न पशु, मनुष्य, चक्र तथा चन्द्रिका/चाप (arch) इत्यादि चिह्न के रूप में प्रयोग किया गया है।

सिन्धु-सरस्वती लिपि के अध्ययन के क्षेत्र में मुख्य रूप से कार्य करने वालों का सांकेतिक परिचय-

1925	वाडेल	1973	एस.आर.राव
1927	लैंग्डन	1974	शंकर हाजरा
1928	स्मिथ	1981-1994	इ. महादेवन
1931	प्राणनाथ एवं मार्शल	1984	यूले पॉल
1932	पेट्री	1985	कमिलव ज्वेलेबिल
1934	मेरिग्गी एवं हण्टर	1986	के.एन. दीक्षित
1937	मैकेय	1987	आर.एस.बिष्ट
1939	हरोज्नी	1987	होल्गर वॉज्के
1940	एम.एस.वत्स	1987	गियोरगियो स्यकुल
1943-46	शंकरानन्द	1988	प्रावनाथ
1946	बी.एम.बरुआ	1988-2000	डी.पी. शर्मा
1947	डेविड डिरिंजर	1990	बर्नार्ड एण्डरसन
1953	हेरास	1991	एस.ज़ी. शाह एवं परपोला
1957	के.एन.शास्त्री	1991	परपोला आस्को
1959	आर.एम.नाथ	1994	जे.पी.जोशी
1963	अहमद हसन दानी	1994	के.के. थपकियाल
	एवं सुधांशु रे	1994	वी.एन. मिश्र
1960-74	बी.बी.लाल	1995	वी. त्रिप्पेर्ट
1969	कृष्ण राव	1995	बी.एस.आर. बाबू
1970	क्रोजनोव के नेतृत्व में	1995	डी.कॉलन
	रूसी एवं फिनलैण्ड के	1996	एम.के. धवलिकर
	विद्वान्	1999	जी.डे हेवेसी

इसके पश्चात् हुए कार्यों पर उपर्युक्त कार्यों की छाया ही दृष्टिगोचर होती है।

ब्राह्मी लिपि का परिचय

ब्राह्मी लिपि भारत की प्राचीनतम ज्ञात लिपियों में से एक है। इसके प्रयोग के प्राचीन विस्तृत उदाहरण अशोक के अभिलेखों के रूप में उपलब्ध हैं। इसके उद्गम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं। इन सिद्धान्तों को दो मुख्य धाराओं में विभक्त किया जा सकता है: (1) विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त, और (2) स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त। विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त को मानने वाले पुनः दो भागों एवं तीन उपभागों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) यूनानी मूल से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति– ब्राह्मी लिपि के यूनानी स्रोत से उत्पत्ति के पोषक अल्फ्रेड म्यूलर हैं। उनके अनुसार सिकन्दर के आगमन के साथ भारतीयों का सम्पर्क यूनानियों के साथ हुआ। इसी से भारतीय यूनानी लेखन-पद्धत्ति को जान सके और उसके प्रभाव से ब्राह्मी लिपि का उद्भव हुआ। प्रिंसेप, सेनार्ट, विल्सन तथा कुछ अन्य विद्वानों ने भी इस मत का समर्थन किया। साहित्यिक एवं पुरालिपिक प्रमाणों के अभाव में इस मत को स्वीकार नहीं किया गया।

(ख) ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति-विषयक विदेशी मूल का एक अन्य सिद्धान्त सेमेटिक लेखन-पद्धतियों पर आधारित है। विलियम जोन्स इस सिद्धान्त के मुख्य प्रस्तुत-कर्त्ता हैं। बाद में अनेक विद्वानों ने इस सिद्धान्त का पोषण किया। पर सेमेटिक लेखन-पद्धतियों की किस शाखा से ब्राह्मी लेखन पद्धति उत्पन्न हुई, इस पर उनमें भी मतभेद हैं। सेमेटिक मूल की पद्धति को ब्राह्मी लिपि का स्रोत मानने वाले पुनः तीन वर्गों में विभक्त हैं– (1) फिनीशियन मूल, (2) दक्षिण सेमेटिक मूल और (3) उत्तरी सेमेटिक मूल। वेबर ने फिनीशियन मूल के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उनके अनुसार फिनीशियन लेखन पद्धति अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि से मेल खाती है। कस्ट तथा बर्नेल ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। दक्षिण सेमेटिक मूल से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति-विषयक सिद्धान्त टेलर, डीके, सीथे तथा अन्य विद्वानों ने प्रस्तुत किया। दक्षिण सेमेटिक लेखन-पद्धत्तियों में अरबी लेखन-पद्धति आती है। इस प्रकार की लेखन-पद्धति के सम्पर्क में भारतीय लेखन पद्धति का सम्पर्क उस समय में अत्यधिक न्यूनतम है। अतः इस सिद्धान्त को अधिक मान्यता नहीं मिली। उत्तरी सेमेटिक मूल से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सिद्धान्त को प्रमुख रूप से प्रस्तुत करने वाले ब्यूलर हैं। वे मानते हैं कि भारतीय व्यापार के माध्यम से उत्तरी सेमेटिक अर्थात् पश्चिम एशियाई क्षेत्र के सम्पर्क में आए। वहीं से लेखन की प्रेरणा प्राप्त करके भारतीयों ने लिपि का निर्माण किया। उनके अनुसार उत्तरी सेमेटिक लिपि चिह्नों में से ब्राह्मी लिपि के 22 चिह्न स्पष्ट रूप से लिए गए दिखाई देते हैं। इनमें से कुछ फिनीशियन वर्ग की लेखन-पद्धति में भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त 5 चिह्न असीरिया के बाटों से और कुछ मेशा प्रस्तर अभिलेख से ब्राह्मी में ले लिए गए हैं। इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मत के प्रतिपक्ष में कहा गया है कि उत्तरी सेमेटिक लिपियां दायीं ओर से बायी ओर लिखी जाती थीं जबकि ब्राह्मी लिपि बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती है अतः दोनों में साम्य नहीं हो सकता। इस पर ब्यूलर का मत है कि अशोक के लेखों के कुछ

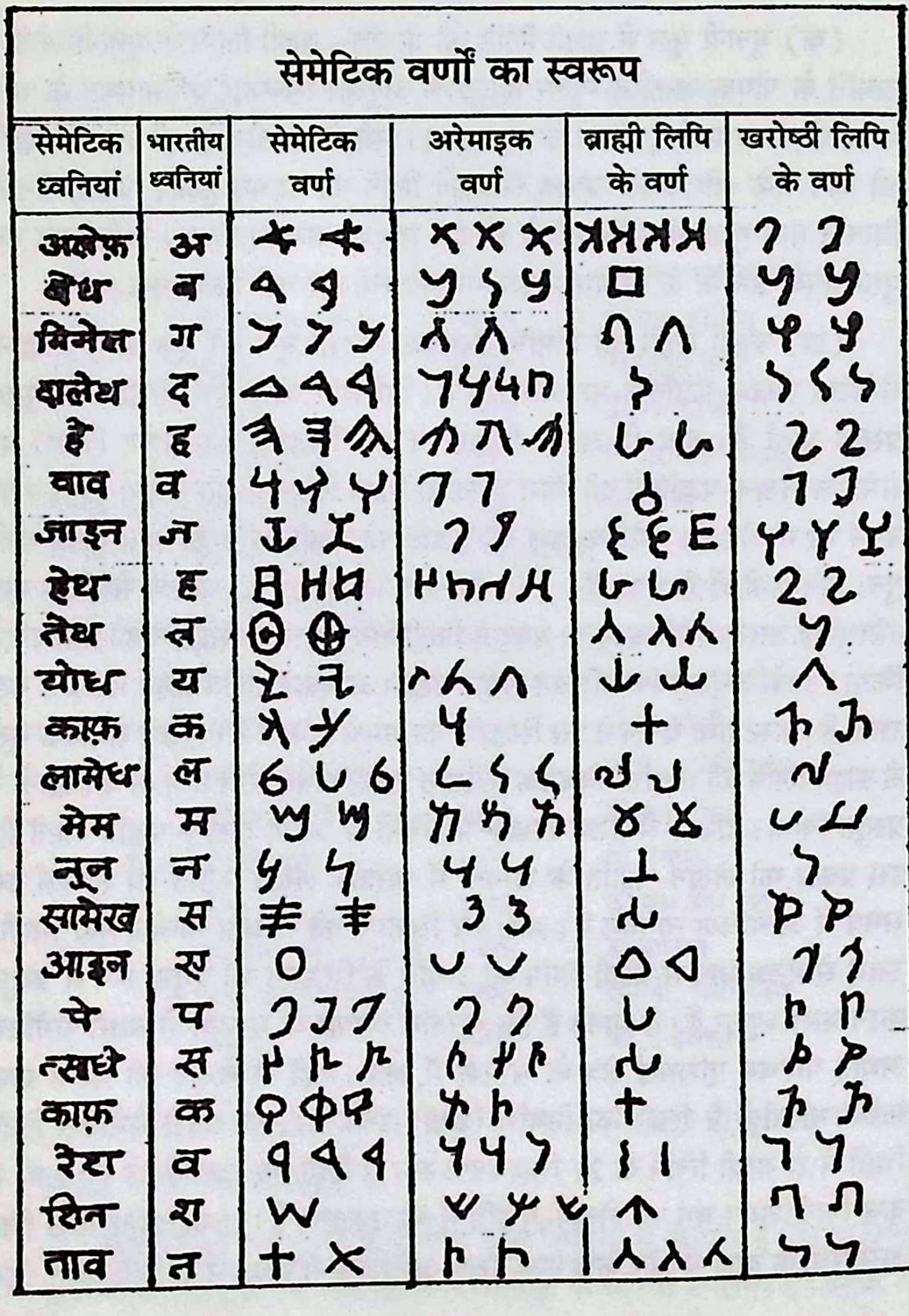

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्ण तथा एरण का मुद्रा लेख दायीं ओर से बायीं ओर ब्राह्मी लिपि के प्रारम्भ में लिखे जाने के द्योतक हैं जिस की दिशा अपनी रचना दिखाने के लिए बाद में बदल दी गई।

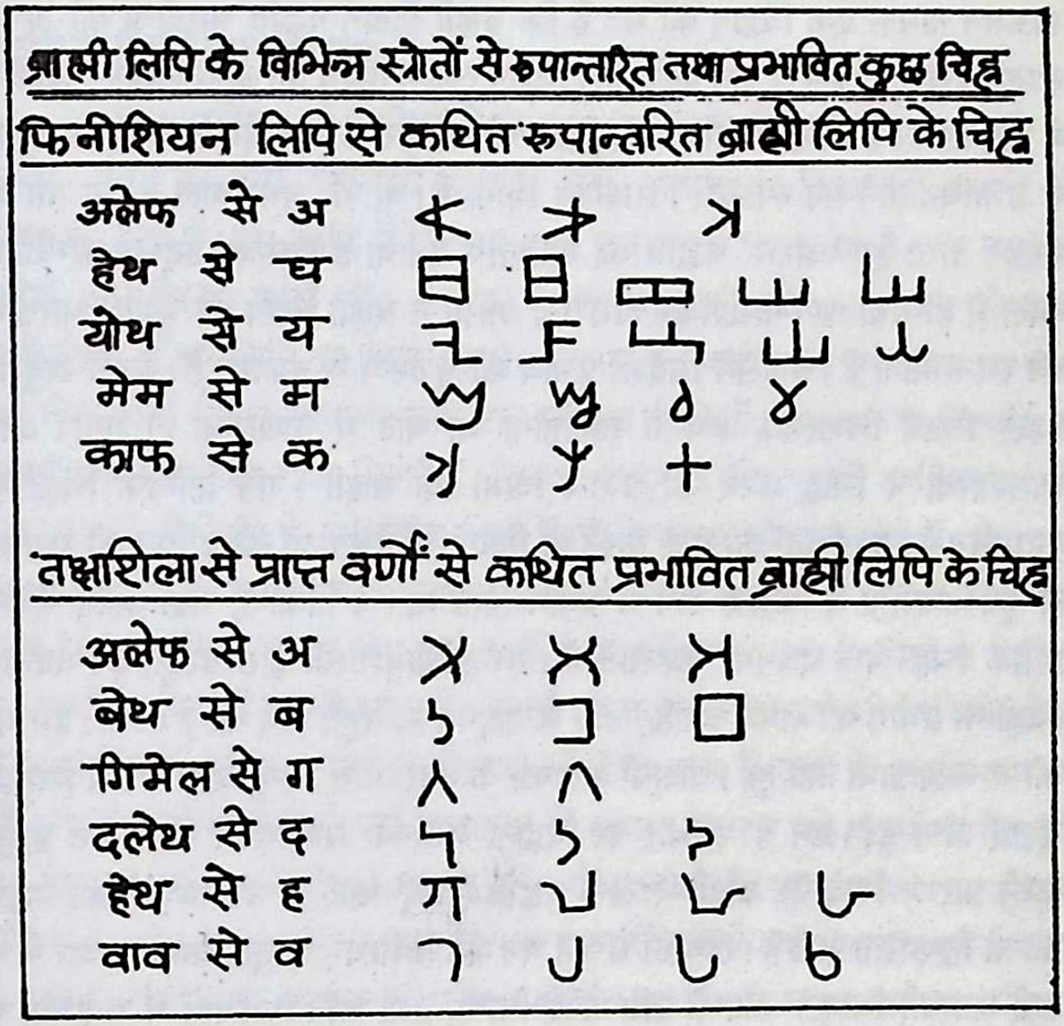

ब्राह्मी लिपि के भारतीय उत्पत्ति-मूलक सिद्धान्त भी अनेक विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं। इस सिद्धान्त को पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- (i) दक्षिण भारतीय मूल, तथा (ii) आर्य मूलक सिद्धान्त। लासेन ने ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति दक्षिण भारतीय स्रोत से मानी है। एडवर्ड थॉमस ने इस मत का अनुसरण करते हुए अपना मत अभिव्यक्त किया है। इस मत के मूल को इस विचारधारा ने प्रभावित किया है कि आर्य भारत में बाहर से आये, तथा उनसे पहले द्रविड़ यहाँ के मूल निवासी थे वे सांस्कृतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व थे। उन द्रविड़ों से आर्यों ने लेखन-कला ग्रहण की। यह सिद्धान्त आर्यों के बाहर से आने की कल्पना-मात्र पर आधारित होने के कारण विद्वानों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(ii) जनरल कनिंघम की मान्यता है कि ब्राह्मी लिपि भारतीयों की अपनी रचना है। वह प्रारम्भ में चित्रात्मक रही होगी। बाद में इसका रूप अक्षरात्मक हो गया। कनिंघम ने कल्पना की कि यह शरीर के अंगों पर आधारित लेखन पद्धति है। भारतीयों ने मिस्र के लेखन-चिह्नों से इनको ग्रहण करके अपना स्वतन्त्र रूप दिया। डाऊसन नामक एक विद्वान् का मत है कि ब्राह्मी लेखन पद्धति भारतीयों की अपनी स्वतन्त्र रचना है। इस में पाये जाने वाले विशेष लक्षण विश्व की अन्य लेखन-पद्धतियों में अनुपलब्ध हैं। इन्होंने लेखन की दिशा को आधार बनाकर इसके सेमेटिक पद्धति से प्रभावित होने का स्पष्टतः निराकरण किया है। के.पी. जयसवाल ने इस मत का मण्डन करते हुए 'अक्षर' पद्धति को अद्वितीय बताया है जिसका उद्भव ऋग्वैदिक काल में हो गया था। गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने ब्राह्मी लिपि को पूर्णतः भारतीयों की रचना माना है। वे इसमें विदेशी प्रभाव को पूर्णरूप से नकारते हैं। उनके अनुसार पहले लेखन चित्रात्मक रूप में रहा होगा जो बाद में वर्णात्मक हो गया। आर. शामशास्त्री ने सिद्ध करने का प्रयास किया कि ब्राह्मी लिपि तान्त्रिक चिह्नों पर आधारित है। इन चिह्नों को पूजा करने के लिए तथा देवताओं की प्रतिमा की स्थापना से पूर्व उपासना के प्रतीक रूप में प्रयोग होता था। ये त्रिकोण, चक्र आदि से बने प्रतीक चिह्न-यन्त्र देवनगर कहलाते थे। परन्तु शामशास्त्री द्वारा प्रस्तुत इन तान्त्रिक चिह्नों के प्रयोग का समय ब्राह्मी लिपि के उद्गम से बहुत बाद का है। अतः इस मत को मान्यता प्राप्त नहीं हुई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सिन्धु घाटी क्षेत्र में लिखित मुद्राएं प्राप्त हुईं। उन के आधार पर विद्वानों ने उनके सम्बन्ध में अपने मत प्रस्तुत करने प्रारम्भ किये कि ब्राह्मी-लेखन-पद्धति सिन्धु-घाटी से उपलब्ध लेखन पद्धति का ही विकसित रूप है। लैंगडन मे इस मत को सर्वप्रथम प्रस्तुत किया। हण्टर ने भी इसी मंत की विस्तृत-रूप से प्रतिपादित किया, तथा कतिपय चिह्नों में समानता भी दर्शायी। राजबली पाण्डेय तथा डी.सी. सरकार भी इसी मत समर्थक हैं।

विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि संस्कृत-वैयाकरणों द्वारा रचित ब्राह्मी लिपि के वर्ण अपने आप में सम्पूर्ण, उत्कृष्ट तथा अशेषतः निर्दोष, हैं। इसके वर्णों का क्रम उच्चारण स्थान से सम्बन्धित है। इनकी रचना एवं वर्गीकरण ध्वनि-विज्ञान के पांरगत विद्वानों द्वारा की गई है। इसमें भ्रामक वर्णों का नितान्त अभाव हैं। इस लेखन-पद्धति का आविष्कार होने के विषय में भी अनेक मत हैं। धार्मिक आधार पर यही माना गया कि ब्रह्मा इस लेखन-पद्धति के जनक हैं अतः इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चीनी विश्वकोष फा-वाङ्-शु-लिन भी इसके आविष्कर्ता फाङ् (ब्रह्मा) को मानते हैं। जैन परम्पराओं के अनुसार प्रजापति ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को सर्वप्रथम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिपि का ज्ञान दिया इसी लिए इस लेखन–पद्धति का नाम ब्राह्मी हो गया। ऐसी भी मान्यता है कि ब्राह्मणों के द्वारा प्रयोग में लाये जाने के कारण इसका नामकरण ब्राह्मी हुआ। अल्बेरुनी का कथन है कि प्राचीन काल में भारतीय लेखन कला भूल गए थे। दैवी प्रेरणा से पराशर के पुत्र व्यास ने लेखन को पुनः प्रस्तुत किया।

खरोष्ठी लिपि का परिचय

प्राचीन भारतीय ज्ञान लिपियों में से अन्य एक खरोष्ठी लिपि है। इस लिपि का प्रयोग भारत के उत्तर–पश्चिमी सीमान्त क्षेत्रों, गन्धार के निकटवर्ती स्थानों पर उपलब्ध होता है। इस लिपि में लिखित लेख मथुरा तक प्राप्त होते हैं। यह दायीं से बायीं ओर लिखी जाती थी। अशोक के शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा से प्राप्त अभिलेखों में इस लिपि का विस्तृत प्रयोग मिलता है। अशोक से पूर्व समय का कोई भी लेख इसमें लिखा उपलब्ध नहीं होता। केवल ईरानियों के चान्दी के सिक्कों पर इस लिपि में लिखित अक्षर मिलते हैं। सिक्कों के दूसरी ओर यूनानी वर्ण उत्कीर्ण हैं। इन पर खरोष्ठी लिपि के अतिरिक्त ब्राह्मी लिपि के अक्षर भी प्राप्त होते हैं। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में अफगानिस्तान एवं पंजाब के क्षेत्रों में यूनानी नरेशों का कम अथवा अधिक शासन बना रहा। यहीं से प्राप्त सिक्के उभय लिपियों से चिह्नित हैं। शकों के सिक्कों पर भी एक ओर यूनानी तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि के लेख हैं। यही स्थिति पार्थियन नरेशों के सिक्कों की है। प्रारम्भ में शकों के अधीन सामन्त के रूप में कार्य करने वाले एवं कालान्तर में स्वतन्त्र शासक बने क्षत्रपों के सिक्कों पर भी इसी प्रकार की लेखन–प्रवृति दृष्टि गोचर होती है। कुषाणवंशी नरेश मध्य एशिया से आए थे। कल्हण ने अपनी रचना राजतरंगिणी में उन्हें तुरुष्क (तुर्क) कहा है। उनकी पोशाक भी इस मत की पुष्टि करती है। इस वंश के प्रमुख शासक कनिष्क के लेखों में भी खरोष्ठी लिपि का प्रयोग मिलता है। इन समस्त राजवंशों के लेख छोटे–छोटे हैं। ये लेख राजाओं के नाम युक्त हैं तथा संख्या में कम है और साधारण लोगों के नामों के साथ संख्या में अधिक है। खरोष्ठी लिपि के कुछ शब्द अथवा वर्ण भरहुत, उज्जैन, अशोक के सिद्धपुर जटिंग रामेश्वर तथा ब्रह्मगिरि के अभिलेखों में भी प्राप्त होते हैं। खोतान से धम्मपद की खरोष्ठी लिपि में लिखित पाण्डु–लिपि प्राप्त हुई है जो एक विशेष उपलब्धि है। खरोष्ठी लिपि में लिखे गए लेख अभिलेखों के उदाहरण धातु–पट्ट, बर्तन, प्रस्तर तथा भोज–पत्रों पर मुख्य रूप से प्राप्त होते हैं। गुप्त–वंश की शक्ति के विस्तार के साथ ब्राह्मी लिपि का प्रचलन एवं प्रसार दृढ़ होने लगा। इस कारण खरोष्ठी लिपि ब्राह्मी लिपि के समक्ष पराभूत हो गयी। फिर भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिन्दुकुश के उत्तर-वर्ती देशों तथा तुर्किस्तान इत्यादि में बौद्ध-धर्म के प्रचलन तथा भारतीय सभ्यता की हो रही दृढ़ता के कारण बाद में भी कुछ शताब्दियों तक खरोष्ठी लिपि का प्रचलन बना रहा।

भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में ही प्रयोग होते हुए भी खरोष्ठी लिपि का उल्लेख अनेक स्वदेशी एवं विदेशी विवरणों से से प्राप्त होता है। बौद्ध-ग्रन्थ ललितविस्तर में 64 लिपियों का उल्लेख है जिसमें खरोष्ठी लिपि को ब्राह्मी लिपि के एकदम बाद परिगणित किया गया है। ब्राह्मी लिपि का नाम इसमें सर्वप्रथम स्थान पर उद्घृत है। जैन-धर्म के सूत्र-ग्रन्थों पण्णवणासूत्र और सम्वायाङ्गसूत्र में प्राप्त लिपियों की सूची में 18 नाम प्राप्त होते हैं। इसमें भी खरोत्थि (खरोष्ठी) की गणना प्रमुखता से की गई है। चीनी विश्वकोष फा-वाङ्-शु-लिन भी खरोष्ठी का उल्लेख करता है। विद्वानों ने इस लिपि के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। इसे बैक्ट्रियन, बैक्ट्रोपालि, काबुली और गान्धारी नामों से भी जाना गया है। ललित-विस्तर और फा-वाङ्-शु-लिन के वर्णन के आधार पर इसको ब्यूलर ने खरोष्ठी लिपि नाम से प्रचारित किया। और यह लिपि इसी नाम से विख्यात हुई। इस लिपि के नामकरण के संदर्भ में अनेक मत प्राप्त होते हैं। खरोष्ठ के आधार पर अधिकांशतः इस मत को बल मिला कि इस लिपि के वर्ण खर अर्थात् गधे के होठों के समान प्रतीत होते हैं, वे अनियमित हैं, वक्र हैं और गधे के हिलते हुए होठों की भांति प्रतीत होते हैं। इसलिए इस लिपि का नाम खरोष्ठी पड़ गया। यह नामकरण चीनी विश्वकोष फा-वाङ्-शु-लिन के एक वर्णन पर आधारित प्रतीत होता है। इसके विषय में उल्लेख है कि इसका आविष्कर्त्ता क्या-नू अर्थात् खरोष्ठ था। उसके होंठ गधे के होठों के समान थे। इसी कारण इस लिपि को खरोष्ठी का नाम दिया गया। एक अन्य मत के अनुसार खरोष्ठी शब्द ईरानी शब्द खरोष्ठ अथवा खरपोस्त का भारतीय रूपान्तर है जिसका तात्पर्य गधे की खाल से है। सम्भव है कि पहले इस लिपि को गधे की खाल पर लिखा जाता होगा इस कारण इस लिपि का नाम खरोष्ठी पड़ गया। एक अन्य सम्भावना व्यक्त की जाती है कि अरेमाइक में इस लेखन पद्धति के लिए खरोट्ठ शब्द का प्रयोग होता था जो संस्कृत में खरोष्ठ रूपान्तरित हुआ तथा लिपि को खरोष्ठी नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

खरोष्ठी लिपि को पढ़ने का श्रेय मेस्सन, प्रिंसेप, नौरिस, लैसन, कनिंघम इत्यादि को जाता है। कर्नल टॉड, जनरल वेंटुरा, बर्न्स आदि ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इण्डो-ग्रीक, शक, पहलव, कुषाण नरेशों की मुद्राएं एकत्रित की थीं। इनके एक ओर यूनानी तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि अथवा ब्राह्मी लिपि के वर्ण उत्कीर्ण थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति

खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के विषय में दो सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं– विदेशी मूल से और स्वदेशी मूल से उत्पत्ति। विदेशी मूल से खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के सिद्धान्त में इसको अरेमाइक लिपि से जोड़ा जाता है। इसका कारण है खरोष्ठी लिपि का दायें से बायीं ओर लिखा जाना। अरेमाइक लिपि उत्तरी सेमेटिक लेखन-पद्धति की ही एक शाखा है। कनिंघम का मत है कि खरोष्ठी लिपि अरेमाइक वर्णों का ही विकसित रूप है। इस्साक टेलर ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि अरेमाइक लिपि से विभिन्न स्थितियों से गुजरते हुए खरोष्ठी लिपि ने अपना स्वरूप प्राप्त किया है। ब्यूलर भी इस मत के प्रबल समर्थक हैं। गौरीशंकर हीरा चंद्र ओझा के अनुसार खरोष्ठी लिपि के ग्यारह वर्ण चिह्न– क,ज्ञ,द,न,ब,य,र,व,ष,स तथा ह– अरेमाइक वर्णों से बहुत कुछ समान हैं। इनका उच्चारण भी समान सा ही है। अहमद हसन दानी का विचार हैं कि 'अरेमाइक लिपि से खरोष्ठी के मूल वर्ण उत्पन्न हुए होंगे तथा अन्य वर्णों को विभिन्न चिह्नों के प्रयोग से विकसित कर लिया गया।' सामान्य रूप से माना जाता है कि खरोष्ठी लिपि में प्राप्त विशेषताएं तथा सेमेटिक लिपियों में उपलब्ध विशेषताएं परस्पर समान हैं यथा दीर्घ स्वरों का अभाव। इस लिपि का प्रयोग उन क्षेत्रों में प्राप्त होता है जो कभी ईरान के अधीन थे। अशोक के इस लिपि में उत्कीर्ण लेखों में लेखन के लिए ईरानी राब्द 'दिपि' का प्रयोग प्राप्त होता है।

स्वदेशी मूल से खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के पक्षधर विद्वानों की मान्यता है कि खरोष्ठी लिपि का प्रयोग प्राकृत भाषा लेखन हेतु होता था। प्राकृत में दीर्घ स्वरों का अभाव है। इसी कारण खरोष्ठी लिपि में भी दीर्घ स्वर प्राप्त नहीं होते। इसमें कोई अन्य कारण की सम्भावना नही है। ईरान के अधिकार वाले क्षेत्र में खरोष्ठी लिपि में लिखित वहाँ के शासकों के सरकारी अथवा आधिकारिक लेख नहीं मिलते। साथ ही अरेमाइक लिपि में लिखित भी कोई लेख प्राप्त नहीं होता जिससे खरोष्ठी लिपि की रचना कर ली गई होगी। दोनों लिपियों में समानता दृष्टिगोचर नहीं होती। फारस से गम्भीर सम्बन्ध न होने के कारण भारतीयों द्वारा वहां से लेखन-पद्धति ग्रहण करना सन्देहास्पद है। लेखन की दिशा अरेमाइक लिपि के समान होते हुए भी वर्ण-विन्यास भारतीय चिह्नों के अनुरूप है। साथ ही स्वर चिह्नों के उपयोग की विधि भारतीय ही है। अरेमाइक लिपि में केवल एक स्वर है जबकि खरोष्ठी लिपि में पांच स्वर चिह्नों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। विदेशों में इसका प्रयोग भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए ही होता था। खरोष्ठी लिपि में लिखित ये लेख अधिकांशतः अशोक के बाद के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समय के हैं। इनको धर्मोपदेशक, प्रवासी तथा व्यापारी उन क्षेत्रों में ले गए होने सम्भव हैं। आर.सी.मजुमदार ने भारत में ईरानी शासन में सन्देह प्रकट किया है। भारत में अरेमाइक लिपि में लिखित कोई लेख भी प्राप्त नहीं होता। अतः भारतीयों द्वारा खरोष्ठी लिपि की रचना के लिए अरेमाइक वर्णों के अनुकरण का सिद्धान्त काल्पनिक प्रतीत होता है।

खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला

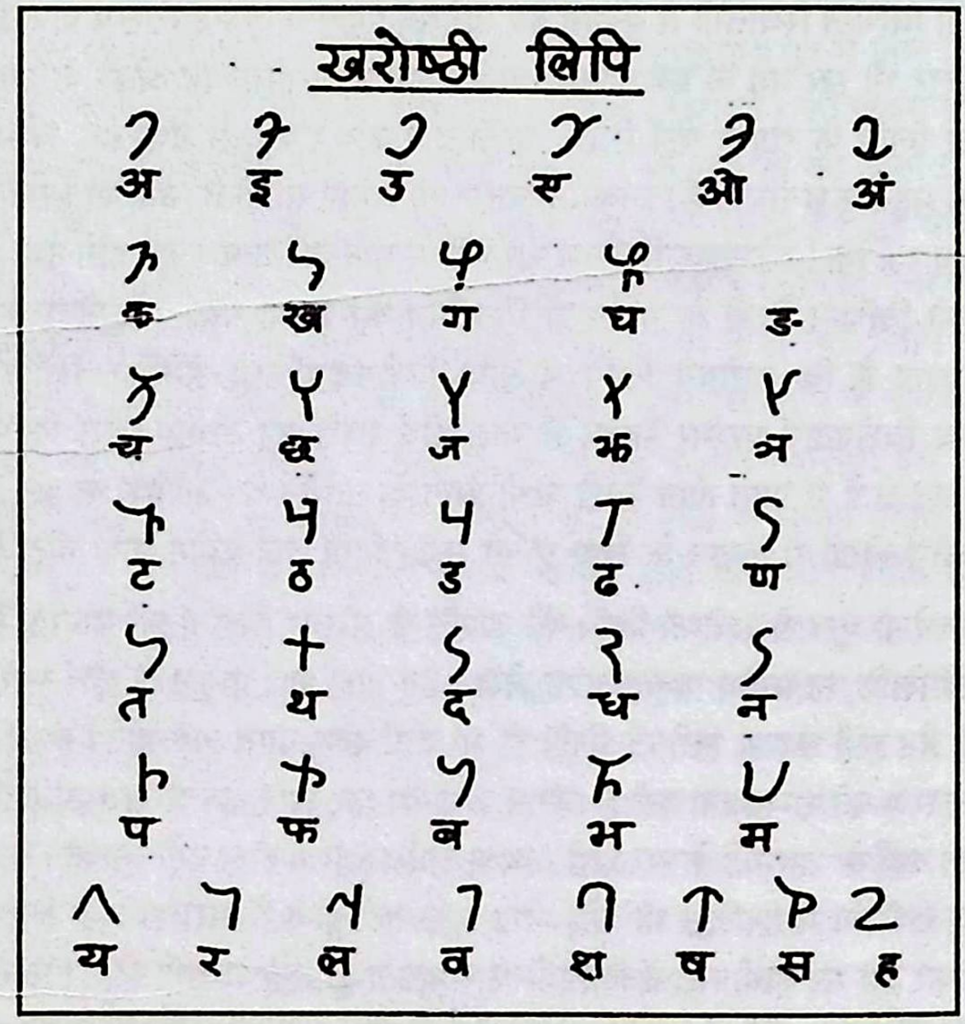

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

4
लिपि रूप

भारत में ज्ञात लिपियों में से एक ब्राह्मी लिपि अपने प्रथम प्रकाश में आने से लेकर वर्तमान में विभिन्न रूपों में आने तक अनेक स्तरों से होती हुई आगे बड़ी। अन्य ज्ञात लिपि–खरोष्ठी लिपि अधिक क्षेत्र तथा समय तक प्रचलित नहीं रही है। अतः उसमें विकास एवं परिवर्तन विशेष रूप से उपलब्ध नहीं होता। ब्राह्मी लिपि यद्यपि मुख्य रूप से उत्तरी एवं दक्षिणी शैलियों में विकसित हुई फिर भी समय एवं क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण उसमें अनेक–रूपता आ गई। यह विकास एवं परिवर्तन ईस्वी संवत् के प्रारम्भ में दृष्टिगोचर होने लगा था। कतिपय साहित्यिक उल्लेखों में भारत में प्रचलित अनेक लिपियों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। बौद्ध–ग्रंथ ललित–विस्तर में 64 लिपियों का नामोल्लेख है–

ब्राह्मी, खरोष्ठी, पुष्करसारि, अंगलिपि, वंगलिपि, मगध लिपि, मंगल्य लिपि, मनुष्य लिपि, अंगुलियलिपि, शकारि लिपि, ब्रह्मवल्लि लिपि, द्रविड लिपि, कनारी लिपि, दक्षिणी लिपि, उग्रलिपि, संख्यालिपि, अनुलोमलिपि, ऊर्ध्वधनुलिपि, दरद लिपि, खस्य लिपि, चीनी लिपि, हूण लिपि, मध्यक्षर–विस्तार लिपि, पुष्पलिपि, देव लिपि, नाग लिपि, यक्ष लिपि, गन्धर्व लिपि, किन्नर लिपि, महोरग लिपि, असुर लिपि, गरुड लिपि, मृगचक्र लिपि, चक्र लिपि, वायुमरू लिपि, भौमदेवलिपि, अन्तरिक्षलिपि, उत्तर कुरूद्वीपलिपि, उपर–गौडलिपि, पूर्व–विदेह लिपि, उत्क्षेपलिपि, विक्षेपलिपि, प्रक्षेपलिपि, सागर लिपि, व्रजलिपि, लेखप्रतिलेख लिपि, अनुद्रुत लिपि, शास्त्रावर्तलिपि, गणावर्त लिपि, उत्क्षेपावर्त लिपि, विक्षेपावर्त लिपि, पादलिखित लिपि, द्विरुत्तस्पद लिपि, लिखित लिपि, दशोत्तरपदसन्धि लिखित लिपि, अध्याहारिणि लिपि, सर्वरूत्संग्रहणि लिपि, विद्यानुलोमलिपि, विमिश्रित लिपि, ऋषितपस्तोतलिपि, धरणिप्रेक्षेण लिपि, सर्वौसधनिष्यन्द लिपि, सर्वसारसंग्रहणि लिपि एवं सर्वमुतरुद्ग्रहणि लिपि.

जैन सूत्र ग्रंथों– पण्णवणासुत्त तथा समवायाङ्गसुत्त में 18 लिपियों की सूची उपलब्ध होती है–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बंभी (ब्राह्मी),जवनालि अथवा जवणालिय, दोसपुरिय, खरोत्थि (खरोष्ठी), पुक्खरसारिया, भोगवैगा, पहाराइया, उय-अंतरिक्खिया, अक्खरपिंट्ठिया, तेवनैया (अथवा वेणैया), निन्हैया (अथवा गिन्हैया), अंकलिपि, गनित लिवि, गंधव्व-लिवि,आदंस लिवि, माहेसरि, दामिलि (द्रविड़) एवं पोलिम्दि (पौलिन्दि)

एक अन्य जैन सूत्र ग्रंथ- भगवती सूत्र- में 'नमो बंभीये लिबिये' सम्बोधन से ब्राह्मी लिपि का मात्र नामोल्लेख प्राप्त होता है।

कालान्तर में कल्हण ने ग्यारह (11) प्रकार की लिपियों का वर्णन किया है-

अर्धनागरी, मलवाड़ी, सैन्धव, भैक्षुकी, सिद्धमातृका, नागर, गौरी, लारी (अथवा लाटी), कर्णाट, आन्ध्री तथा दिरवारी (द्राविड़ी)

उपर्युक्त सभी रूपों में खरोष्ठी लिपि एवं ब्राह्मी लिपि का उल्लेख मुख्य लिपियों के रूप में उल्लेख है। इनमें से भारत में ब्राह्मी लिपि की विशद् रूप में प्रचलित हुई। उसमें आये विभिन्न रूप ललित-विस्तार में विस्तार से तथा पण्णवनासूत्र, एवं समवायाङ्गसूत्र ने मुख्य शैलियों के रूप में वर्णन किया हैं। कालान्तर में कल्हण ने अपने समय में प्रसिद्ध एवं प्रचलित ज्ञात शैलियों का उल्लेख किया। आधुनिक काल में गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने बारह (12) अहमद हसन दानी ने नौ (9) भेदों में इनकी गणना की है। पर इन सब के मूल में ब्राह्मी लिपि की दो शैलियाँ ही उभर कर आती हैं- उत्तर भारतीय शैली एवं दक्षिण भारतीय शैली। पूर्वी भारतीय शैली तथा पश्चिम भारतीय शैली मुख्य शैलियों- उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय का मिश्रण मात्र हैं। भारत के विस्तृत क्षेत्रों में प्रयोग होने के कारण क्षेत्रों की भिन्नता और लेखन की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के कारण ब्राह्मी लिपि में परिवर्तन आए। समय के प्रभाव का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। लेखन में सजावट एवं त्वरा अर्थात् घसीट प्रवृत्ति भी इसमें सम्मिलित थी। अतः ब्राह्मी लिपि का स्वरुप ही बदल गया। इसी परिवर्तन के फलस्वरुप आज भारत में प्रयुक्त लगभग समस्त लिपियों की जनक एक ब्राह्मी के होते हुए भी एक-दूसरे के क्षेत्र में पहचान में वह नहीं आती।

अशोक के लेखों में ब्राह्मी लिपि का प्रारम्भिक स्वरूप प्राप्त होता है। इस समय के लेखों में वर्णों को रचना को देखकर विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि वह ब्राह्मी लिपि का प्रारम्भिक रूप है। वर्ण लगभग सीधे रखने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। उन्हें ज्यमितीय आकृतियों- सरल रेखा, वक्र रेखा, कोण, त्रिभुज एवं वृत्त की सहायता के रूप दिया गया है। वर्णों की ऊँचाई समान है। संयुक्ताक्षरों में भी वर्ण अपनी ऊँचाई की अपनी सीमा में ही हैं, केवल वर्णों का माप छोटा कर दिया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्ण कोणात्मक हैं पर घसीट प्रवृत्ति का लेखन भी मिल जाता है। वर्ण अपने एक ही रूप में अनेक प्रकार से उत्तीर्ण हैं। पुरालिपि- विशारदों ने इनमें से कुछ उदाहरणों के आधार पर इन्हें ब्राह्मी लिपि के उत्तर-भारतीय तथा दक्षिण-भारतीय शैलियों के प्रारम्भिक रूप माना है। परन्तु वास्तविकता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। किसी भी वर्ण के एक रूप को किसी भी क्षेत्र में जोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि एक ही स्थान पर एक ही वर्ण के एकाधिक रूप प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण-स्वरूप अकेले 'अ' के कुल 19 रूप प्राप्त होते हैं। इनमें से आठ रूप तो केवल गिरनार शिलालेख में ही प्रयुक्त हैं। इसी लेख में 'प' तथा 'म' के आठ-आठ रूप 'क', 'ज', 'द' तथा 'ध' के छह-छह रूप, 'ग', 'ट', 'इ' 'त', 'य','र' एवं 'ल' के पांच-पांच रूप मिल जाते हैं।

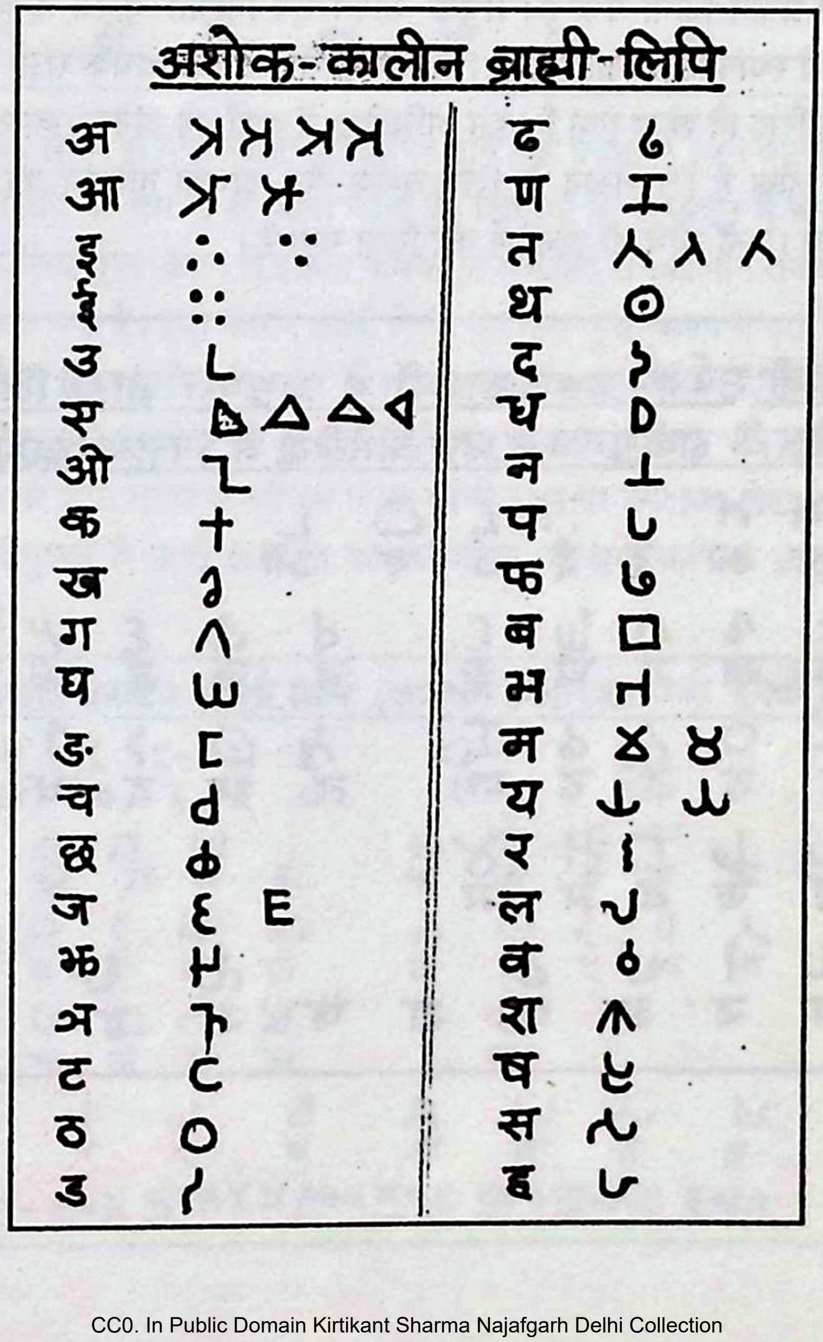

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपि का स्वरूप

अशोक के पश्चात् के विस्तृत अभिलेख के रूप में खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख है। अशोक तथा खारवेल के मध्य भी कुछ अभिलेख प्राप्त होते हैं। पर वे विस्तृत नहीं है; अतः संपूर्ण वर्णमाला के उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते। खारवेल के अभिलेख के वर्ण अशोक-कालीन वर्णों से अग्रसरित विकासोन्मुख दृष्टिगोचर होते हैं। अशोक-कालीन वर्णों की सीधी खड़ी रेखा अपेक्षाकृत अधिक नीचे की ओर लंबी हो चुकी है। पर वह रेखा कुषाण काल में नीचे से बाईं ओर मोड़ गई है। अशोक-कालीन वर्णों में जो वर्ण गोलाई-युक्त थे खारवेल के समय में कोणीय होने लगे थे। खारवेल के अभिलेखों में पूर्ण-विराम को अभिव्यक्त करने के लिए रिक्त स्थान का प्रयोग किया गया है। संयुक्त-वाक्य एवं मिश्रित-वाक्य के वाक्यांशों के मध्य में भी स्थान रिक्त रखा हुआ है। लगभग प्रत्येक व्यक्ति वाचक संज्ञा से पहले भी स्थान को रिक्त ही छोड़ा गया है। इस अभिलेख में वर्णों की अनेक-रूपता के मिलने से प्रतीत होता है कि लेखन के लिए वर्णक-पैन-अथवा तूलिका का प्रयोग नहीं किया गया। उन्हें सीधे ही उत्कीर्ण कर दिया गया है।

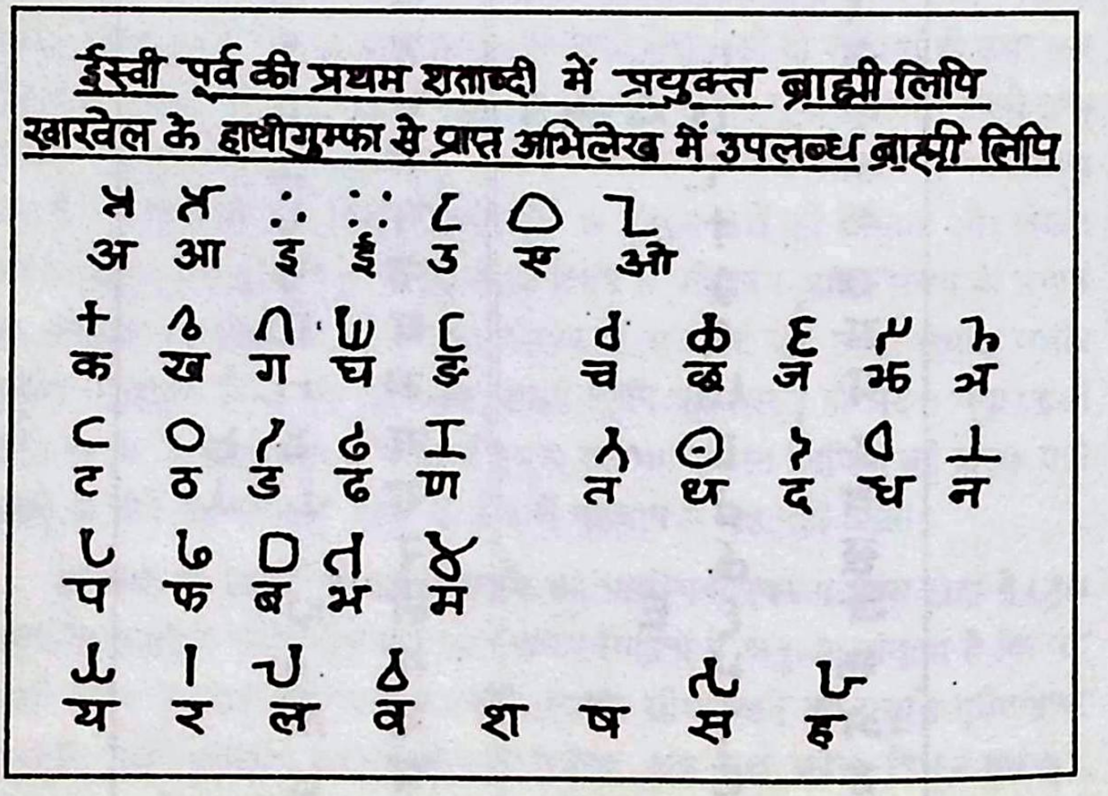

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

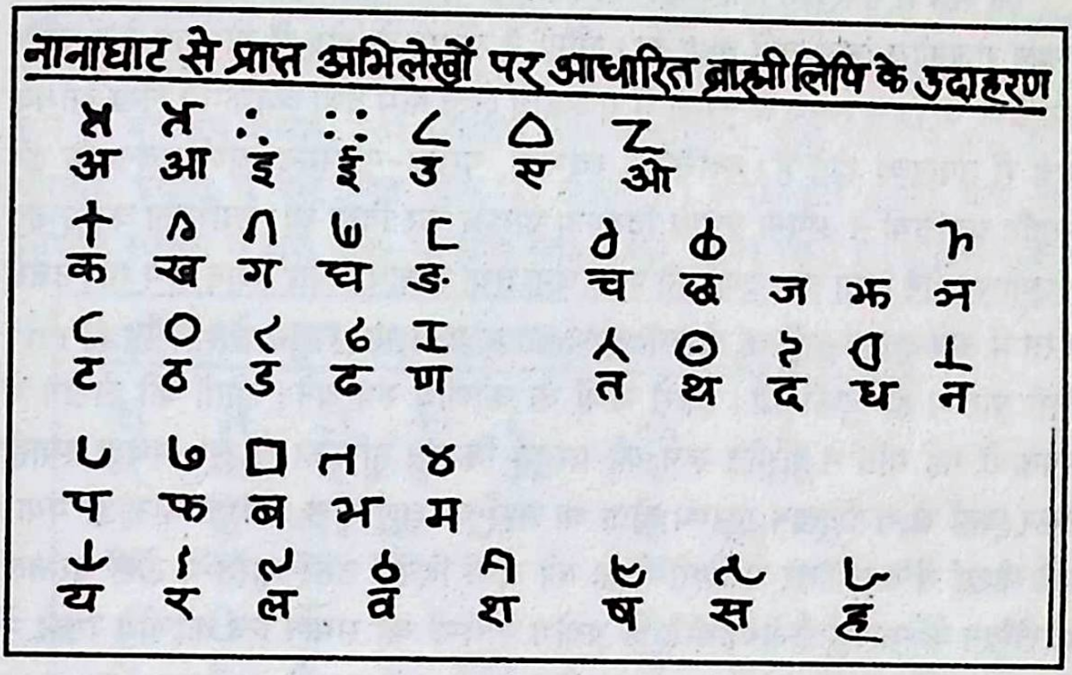

अशोक के समय से गुप्त साम्राज्य स्थापित होने तक प्रयोग में आने वाली लेखन पद्धति ब्राह्मी लिपि के नाम से ही जानी जाती है। लिपियों के अध्ययन में वर्गीकरण की सुविधा के लिए गुप्त–काल से इनका नामकरण संबंधित समकालीन राजवंशों के आधार पर किया गया है। इसी कारण ब्राह्मी लिपि का नाम गुप्त–काल में उत्तरी भारत के एक बड़े भाग के स्वामी गुप्त–वंश नरेशों के साथ 'गुप्त–लिपि' कल्पित किया गया। अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि से गुप्त लिपि के मध्य अशोक के पौत्र दशरथ के लेख, बेसनगर से प्राप्त गरुण से अंकित लेख, सांची स्तूप पर उपलब्ध लेख, भरहुत, बोधगया, हाथीगुम्फा से प्राप्त खारवेल का अभिलेख, शोडाष, कनिष्क इत्यादि के लेख आते हैं।

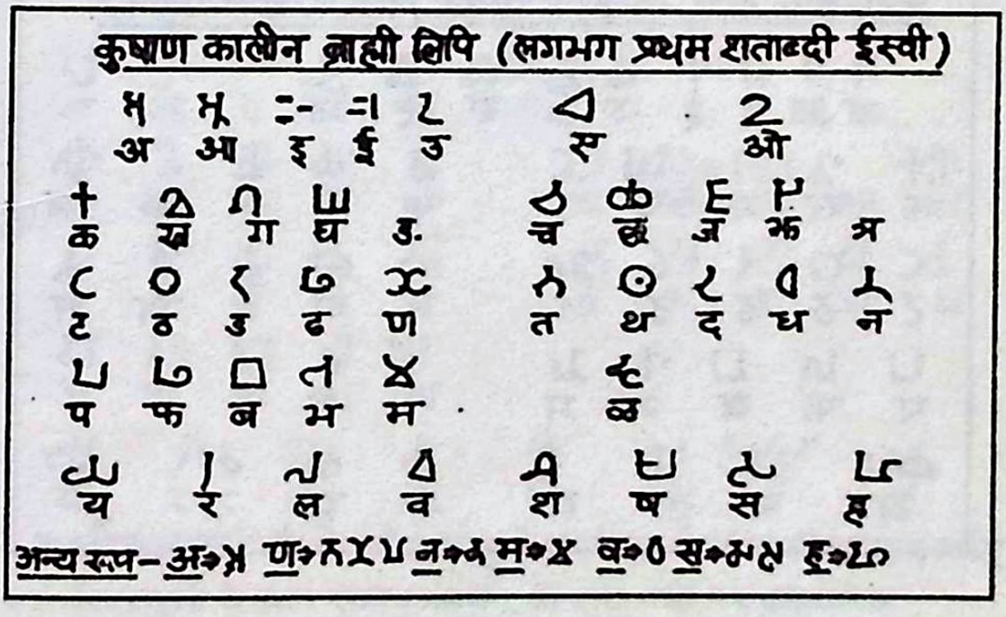

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन सब में उपलब्ध लिपि की विविधता से संकेत प्राप्त होता है कि लेखन कार्य केवल राजकीय कार्य नहीं बचा था। लोगों ने लेखन के क्षेत्र में योगदान देना प्रारंभ कर दिया था। इस समय के लेखों में राजकीय लेख कम तथा व्यक्तिगत लेख अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। व्यक्तिगत स्वभाव, पसन्द-नापसन्द, वर्ण-रचना के ढंग इत्यादि प्रवृत्तियों ने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया था। त्वरितता का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। वर्णों की समरचना तथा सजावट ओर ध्यान कम था। उत्तरी भारत में अपेक्षाकृत अधिक लेखन-कार्य का प्रचलन था। मथुरा क्षेत्र में पैन (Pen) शैली प्रारम्भ हो चुकी थी। इससे वर्णों के कोणीय रुप बने। लोगों की लेखन में अपनायी गई गति ने घसीट रूप को प्रस्तुत किया। तूलिका से रंग अथवा स्याही लेकर जहाँ से वर्णलेखन प्रारम्भ होता था वहाँ पर वर्ण कुछ अधिक मोटा हो गया। इसी मोटाई ने कालान्तर में शिरो-रेखा को जन्म दिया। उत्तर भारत में ठोस धरातल पर लेखन के कारण छैनी-हथौड़े के प्रयोग नें वर्णों को समान एवं कोणीय रखने में सहायता की। भूर्ज पत्र, ताड़ पत्र, इत्यादि कोमल धरातल पर स्टायलस (Stylus, सूए जैसे स्वरूपवाला) से लेखक ने घसीट प्रवृति को जन्म दिया तथा वर्णों में गोलाई आ गई। यह प्रवृत्ति ब्राह्मी लिपि के दक्षिण भारतीय स्वरूप को विकसित करने का कारण बनी। प्रारम्भ में घसीट प्रवृत्ति किसी क्षेत्र-विशेष में सीमित नहीं थी।

गुप्तकालीन लिपि-गुप्त लिपि

गुप्त काल प्रारम्भ होते-होते (लगभग 350 ई० तक) ब्राह्मीलिपि में विभिन्न रूप जन्म ले चुके थे। बर्गेस, फ्लीट, बर्नेल, ब्यूलर इत्यादि ने इन्हें उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय शैली में विभक्त किया। ये मुख्य रूप से (1) उत्तरी भारत, (2)

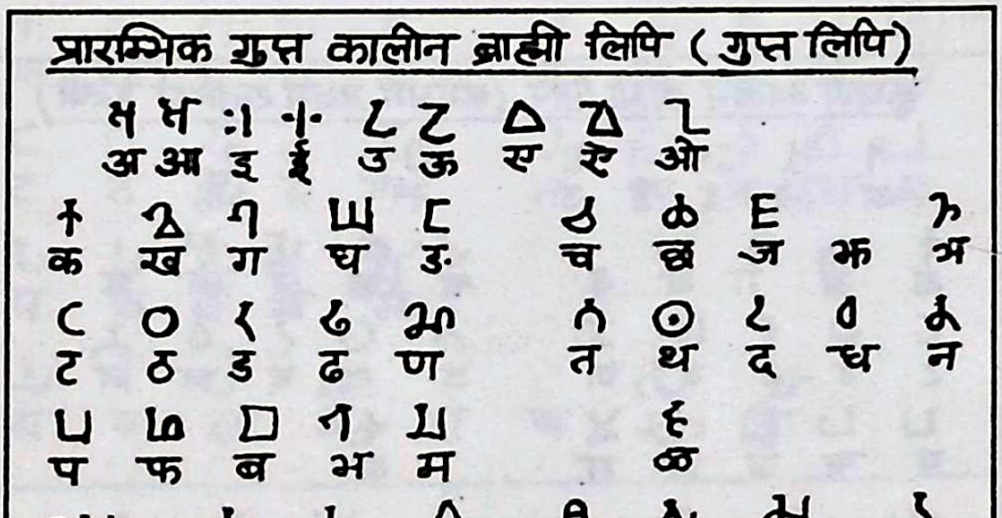

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गुजरात, राजस्थान तथा मध्यभारत तथा (3) दक्षिण भारतीय रूपों में परिगणित करते हैं। दक्षिण भारतीय रूप में उत्तर-दक्षिण (दक्कन) तथा (दक्षिणी) दक्षिण रूप हैं। यह रूप क्रमशः उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय, पूर्वी भारतीय तथा पश्चिम भारतीय प्रवृत्ति में परिगणित किए जा सकते हैं। अपेक्षाकृत समान माप वाले, कोणीय स्वरूप में वर्ण उत्तर-भारतीय स्वरूप की लेखन शैली है। दक्षिण भारतीय

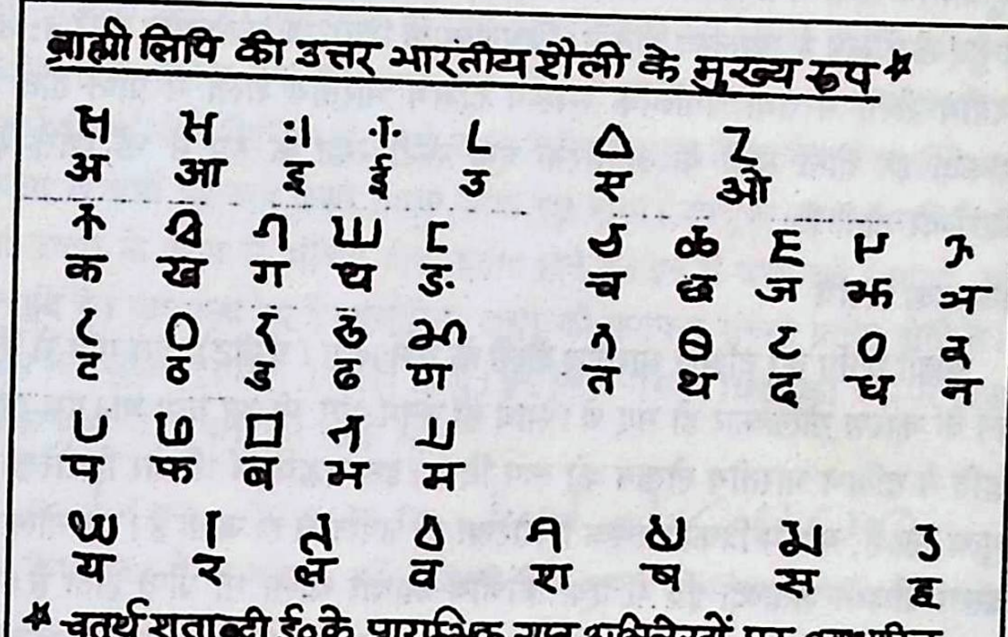

* चतुर्थ शताब्दी ई० के प्रारम्भिक गुप्त अभिलेखों पर आधारित

शैली में वर्णों में घसीट तथा त्वरा प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसके फलस्वरूप वर्णों में गोलाई आ गई है। इनकी रेखाओं में भंग (Bend) प्राप्त होता है जो कई बार अनावश्यक प्रतीत होता है। इस शैली में खड़ी रेखाएँ अपेक्षाकृत लंबी भी हो गई है'

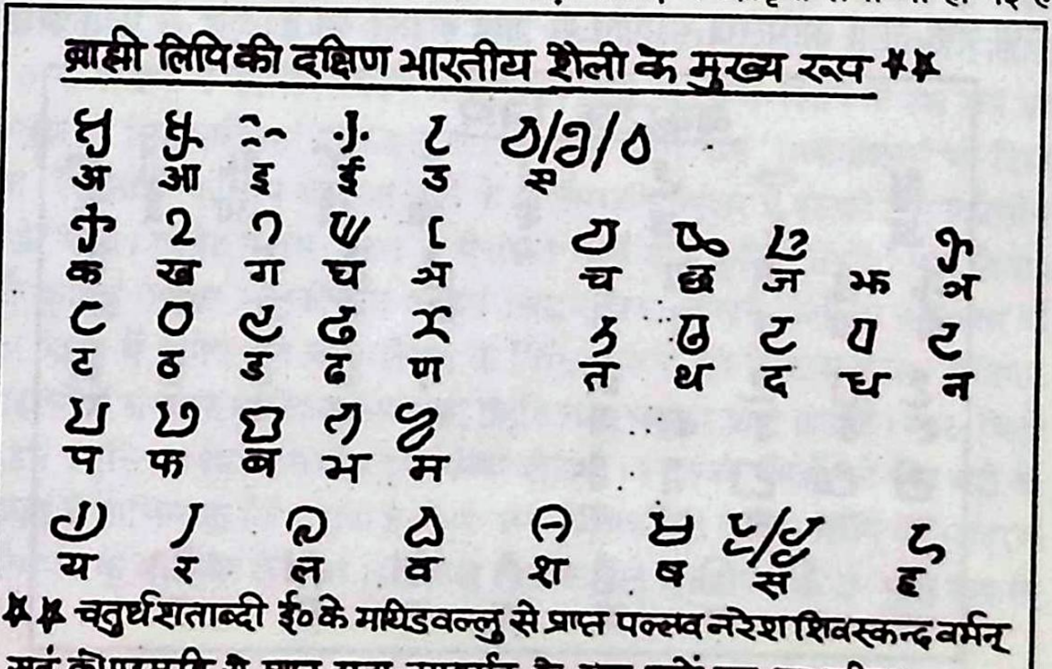

** चतुर्थ शताब्दी ई० के मयिडवल्लु से प्राप्त पल्लव नरेश शिवस्कन्द वर्मन् एवं कोण्डमुदि से प्राप्त राजा जयवर्मन् के दान-पत्रों पर आधारित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा नीचे से बायीं ओर घूम गयी हैं। पूर्वी भारतीय एवं पश्चिम भारतीय शैली कोई स्वतंत्र शैली नहीं हैं। ये उत्तर-भारतीय तथा दक्षिण भारतीय शैलियों का मिश्रण है। इन में कभी उत्तर-भारतीय शैली का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। तो कभी दक्षिण-भारतीय शैली का। वर्ण लेखन में आरम्भ से तूलिका ने अधिक रंग अविा स्याही के आ जाने से की से शिरोरेखा की उत्पत्ति हुई। यह शिरो रेखा कालांतर में त्रिभुजात्मक तथा वर्गाकार अथवा चौकोर रुप में विकसित हुई। ये दोनों खाली तथा भरे हुए ठोस रूप में उपलब्ध होते हैं। त्रिभुजात्मक शिरोरेखा का प्रयोग मुख्यतः उत्तर भारतीय शैली में तथा वर्गात्मक स्वरूप दक्षिण भारतीय शैली में प्राप्त होता है। यदाकदा इन दोनों रूपों के अतिरिक्त एक छोटी रेखा के रुप में भी शिरो-रेखा दृष्टिगोचर होती हैं।

वाकाटक लिपि

ब्राह्मी लिपि की दक्षिण भारतीय शैली के वर्ण त्वरा (घसीट) द्वारा गति से लिखे जाने के कारण गोलाकार हो गए थे। साथ ही उनमें भंग भी आ गया था। इस लेखन पद्धति ने दक्षिण भारतीय लेखन को रूप दिया। इस पद्धति में चौकोर शिरोरेखा का प्रभुत्व रहा है, यद्यपि त्रिकोणात्मक शिरोरेखा भी उपलब्ध हो जाती है। यह गोलाकार स्वरूप पाँचवी शताब्दी ई० में एक कोणीय आधार वाला भी प्राप्त होता है। यही कोणीय आधार युक्त दक्षिण भारतीय शैली ही वाकाटक शैली कही जा सकती है। इस शैली में वाकाटक नरेशों के साथ-साथ परिव्राजक एवं उच्छकल्प-वंशी नरेशों के लेख भी दृष्टिगोचर होते हैं। पूना से प्राप्त प्रभावतीगुप्ता का लेख इस पद्धति में उत्कीर्ण प्रमुख उदाहरण है। इसमें शिरोरेखा त्रिकोणात्मक है। इसी पद्धति में लिखा गया एक अन्य अभिलेख मझगाँव से प्राप्त हस्तिन् का है। पूना से प्राप्त लेख में

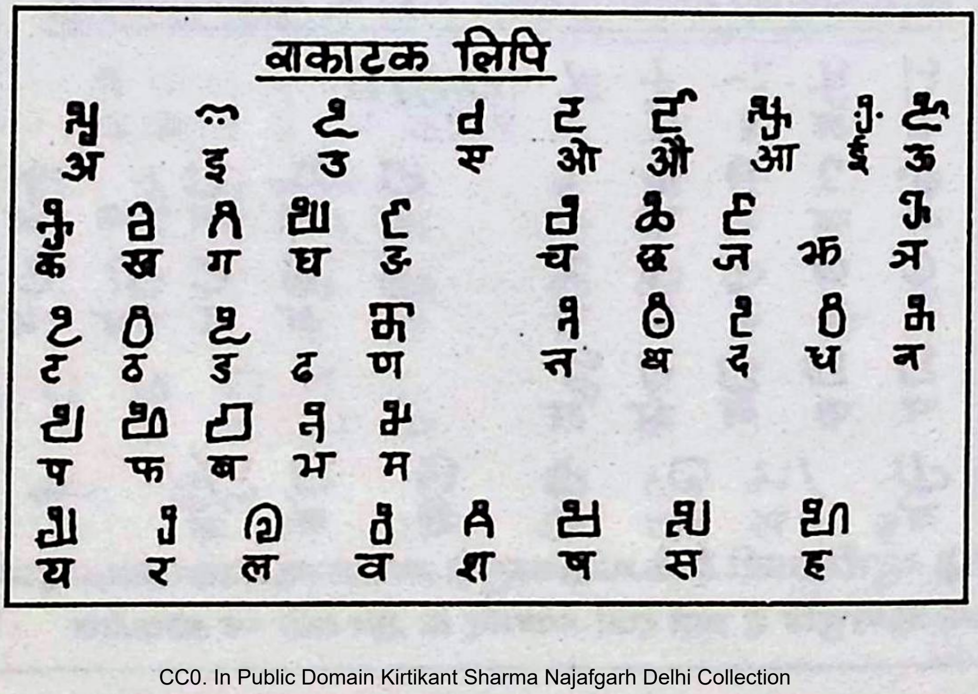

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दक्षिण भारतीय शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है परन्तु हस्तिन् के मझगांव लेख में यह प्रभाव नहीं है। इसी क्रम में जयनाथ, सर्वनाथ, संक्षोभ, भीमसेन II के लेख भी महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इन में उत्तर भारतीय शैली प्राप्त होती है परंतु समकालीन कुटिल लिपि का प्रयोग अथवा कुटिल लिपि की छाया उपलब्ध नहीं होती। इस प्रसंग में औरों से वाकाटक अभिलेख (चौथी-पांचवी शताब्दी ई०) अन्य उदाहरणों से भिन्न हैं। इनके जैसे प्रयोग सरभपुर नरेशों के छठी-सातवीं शताब्दी ई० के लेखों में भी उपलब्ध होते हैं। वाकाटकों के साथ वर्णित लेखों की लेखन पद्धति को देखकर प्रतीत होता है कि इन के समय एवं क्षेत्र में लेखन का व्यवसाय करने वाले उत्कीर्णकर्त्ताओं ने विभिन्न रूपों को टाइप जैसे स्टाइलस तैयार कर लिए होंगे। उनके प्रयोग से वर्णों का रूप तैयार किया जाता रहा होगा। उपर्युक्त समस्त अभिलेखों में इस प्रकार के टाइप से अंकित लेख प्रतीत होते हैं। इन में वर्णों की रेखाओं, कोणों इत्यादि का माप एक सा है। इसीलिए टाइप की कल्पना सच्ची प्रतीत होती है। इन टाईप की संख्या लगभग 14 रही होगी। इन भिन्न-भिन्न चिह्नों को परस्पर उत्कीर्ण करके वर्णों की रचना की जाती थी।

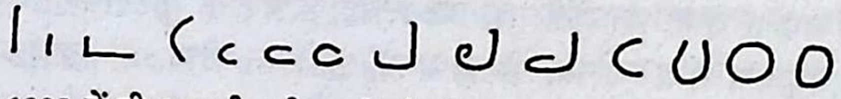

(ये चिह्न 1983 में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पर आधारित है।)

इस प्रकार के प्रयोग मल्लर, बोंडा, अधभर, खोह, करितलाई इत्यादि स्थानों से उपलब्ध ताम्रपत्र अभिलेखों में प्राप्त होते हैं।

कुटिल लिपि– पैन/कलम तथा तूलिका के चौड़े अग्रभाग के उपयोग से वर्णों के लेखक ने सजावट की प्रवृत्ति के कारण वर्णों का विशिष्ट रूप उत्पन्न हो गया। छठी शताब्दी ई० में वर्णों की यह रूप उभर चुका था। इस काल के वर्णों की रेखाओं के अन्त के रूप में कोणीय स्वरुप उत्पन्न होने लगा था। गुप्त-लिपि के इस रूप का नामकरण 'सिद्धमात्रिका' प्रसिद्ध हुआ। इसे एक अन्य नाम 'विकटयक्षरा' भी दिया गया। रेखान्त में कोणीय रूप आ जाने के फलस्वरूप ब्यूलर ने इसको 'न्यूनकोणीय शैली' कहा। फ्लीट ने इस प्रकार से लिखित वर्णों को 'कुटिल लिपि' नाम दिया। इसी कुटिल अथवा न्यूनकोणीय अथवा सिद्धमात्रिका लेखन शैली से कालांतर में उत्तर भारत में प्रयोग होने वाले लेखन के विभिन्न रूपों का विकास हुआ। कतिपय उदाहरणों में सजावट से लेकर लेखन की प्रवृत्ति बढ़-चढ़कर प्राप्त होती है। स्वर-चिह्नों पर इस प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन स्वर-चिह्नों को बेल बूटें के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। पूर्ण-रूप से विकसित कुटिल लिपि के उदाहरण यशोधर्मन के मन्दसौर से प्राप्त अभिलेख में प्राप्त होते हैं। अपने शोभा-युक्त रूप के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

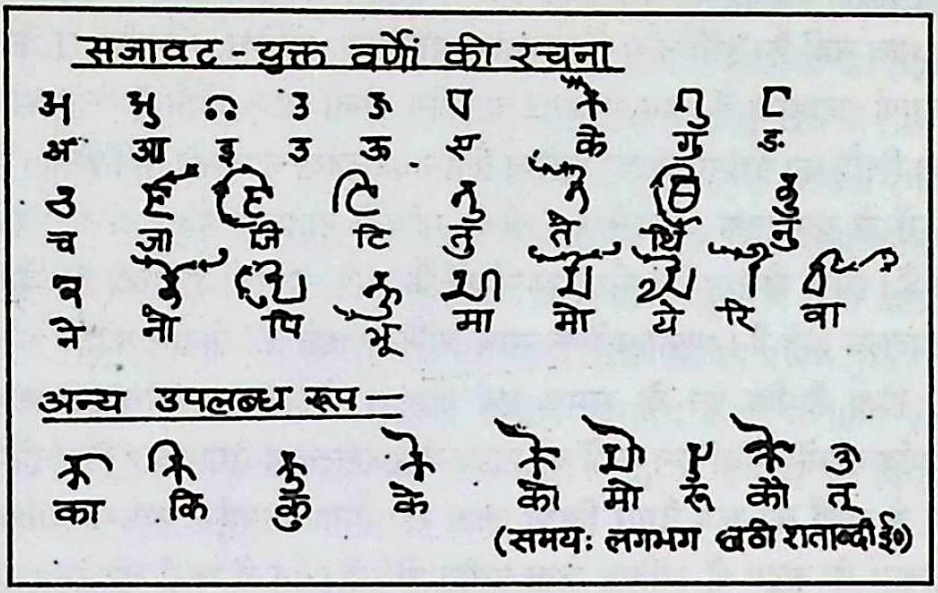

कारण यह शैली अत्यधिक लोकप्रिय हो गई। बोध-गया से प्राप्त महानामन् का अभिलेख, मौखरी नरेशों के लेख, राजा हर्ष के बांस खेड़ा तथा मधुबन से प्राप्त लेख, नेपाल से उपलब्ध अंशुवर्मन के लेख उत्तर गुप्त-वंशीय नरेशों के अभिलेख, अनंत वर्मन के बराबर तथा नागार्जुनी गुहा अभिलेख, मेवाड़ के गुहिलवंशीय राजाओं के लेख, राजपुताना तथा मालवा से प्राप्त प्रतिहारों के लेख, लक्खामंडल प्रशस्ति इत्यादि असंख्य लेख कुटिल- लिपि में लिखित हैं। जापान के होर्युजी मठ में संरक्षित 'प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र' तथा 'उष्णीषविजयधारणी' पाण्डुलिपियाँ इसी लिपि में लिखित अन्य मुख्य महत्वपूर्ण उदाहरण है। गुप्त-लिपि से विकसित कुटिल लिपि नौवीं शताब्दी ईस्वी तक महत्वपूर्ण स्थान पर सुशोभित रही।

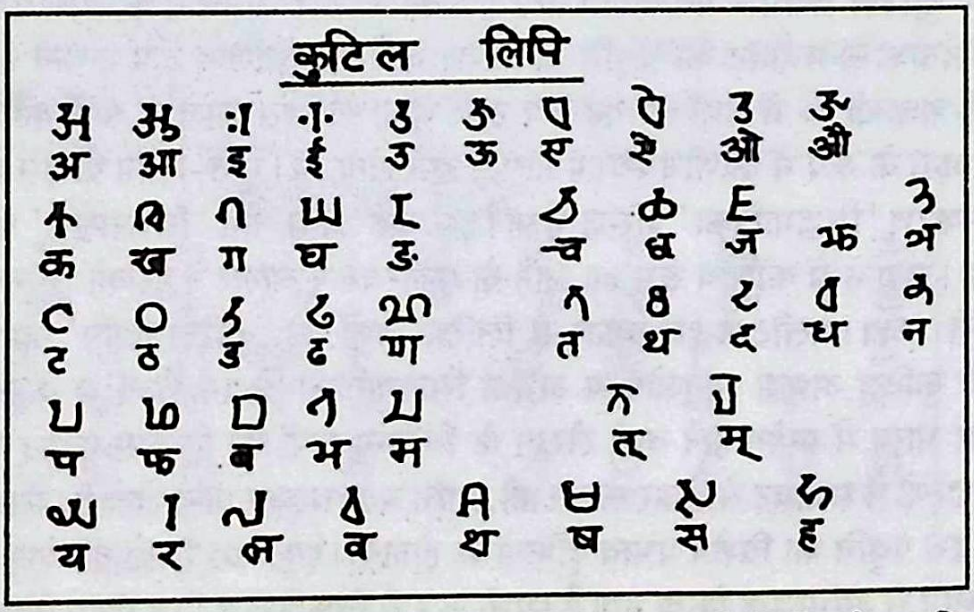

नागरी लिपि— विकास क्रम में कुटिल-लिपि से नागरी लिपि की उत्पत्ति हुई। उत्तर भारत में नौवीं शताब्दी ईस्वी की अंतिम अवधि में इस लेखन पद्धति का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु दक्षिण भारत के उत्तरी भाग में इसकी स्थिति आठवीं शताब्दी ईस्वी में ही दिखाई देने प्रारम्भ हो गई थी। कोल्हापुर के सामनगढ़ से प्राप्त राष्ट्रकूटवंशीय नरेश दन्तिदुर्ग का संवत् 675 (754 ई०) के एक अभिलेख में नागरी लिपि के प्रारम्भिक लक्षण दृष्टिगोचर हो जाते हैं। दसवीं शताब्दी ईस्वी में संपूर्ण उत्तर-भारत में इसका प्रभाव दिखाई देने लगा। यह लेखन-पद्धति लम्बे समय तक उत्तर भारत में प्रचलित रही। देवनागरी के रूप में यह आज भी उपलब्ध है। दैव भाव होने के कारण संभवतः नागरी के साथ देव शब्द जोड़कर इसका नामकरण देवनागरी हो गया। दसवीं शताब्दी ई० के पश्चात् बंगाल तथा बिहार में नागरी के रूप में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया। इस परिवर्तन के फलस्वरुप वहां पर बंगला लिपि का उद्‌गम हुआ। दसवीं शताब्दी ईस्वी के पश्चात् शिरोरेखा के स्वरूप में भी प्रभावशाली परिवर्तन आने लगा। त्रिकोणात्मक शिरोरेखा सरल रेखा के रुप में परिवर्तित होने लगी। फलस्वरुप ऐसे वर्ण जिनके शीर्ष दो भागों में विभक्त थे। उनके दोनों शीर्षों की भिन्न-भिन्न रेखाओं का एक शीर्ष रेखा के रूप में परिवर्तन हो गया। ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी में नागरी लिपि वर्तमान देवनागरी लिपि का रूप लेना प्रारम्भ कर देती है। तथा बाहरवीं शताब्दी ईस्वी में ही यह आधुनिक देवनागरी लिपि के स्वरूप के समान हो गई। स्वर-चिह्न की रूप-रचना भी आधुनिक स्वरूपों के निकटवर्ती रूप को प्राप्त हो गए थे। दक्षिण भारत में प्राप्त नागरी-लिपि को नन्दि-नागरी के नाम से जाना जाता है। दक्षिण भारत में नागरी-लिपि का प्रयोग राष्ट्रकूट नरेशों के अभिलेखों में नौवीं

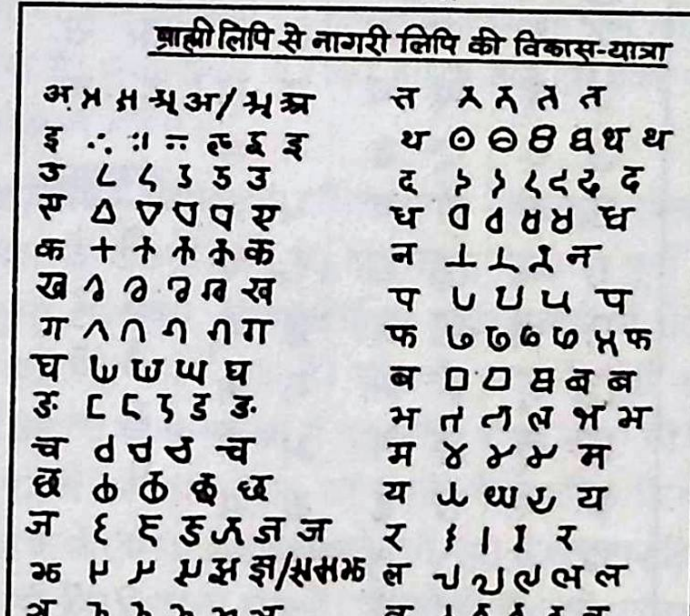

ब्राह्मी लिपि से नागरी लिपि की विकास-यात्रा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शताब्दी ईस्वी तक उपलब्ध होता है। इसका प्रचार वहां पर संस्कृत लेखन हेतु किया गया है। चौदहवी- पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी में नागरी लिपि का विकास दो रूपों में विभाजित हो गया- एक पूर्वी शाखा तथा दूसरी मध्यदेशीय शाखा। पूर्वी शाखा में मुख्य बिहारी लिपि थी। वास्तव में बिहारी कोई स्वतंत्र लिपि नहीं है। यह तिरहुती कैथी लिपि, मगही कैथी लिपि तथा भोजपुरी कैथी लिपि का सामूहिक सम्बोधन है। इसका प्रयोग पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में हुआ। लगभग दौ सौ वर्ष पूर्व कार्यालयों और (न्यायालय) कचहरियों में अधिकांशतः कायस्थों द्वारा प्रयोग करने के कारण इसका नाम कैथी पड़ गया। मध्य-देशी शाखा गुजराती लिपि, राजस्थान के व्यवसायियों द्वारा प्रयुक्त महाजनी लिपि, मालवों द्वारा प्रयुक्त मालवी लिपि और महाराष्ट्र की मोड़ी लिपि तथा मध्यप्रदेश में प्रयुक्त लिपियां है। वर्तमान में इनका प्रचार, प्रसार एवं प्रयोग नहीं होता। वास्तव में नागरी लिपि से ही कैथी के रूप में लेखन-शैली का विकास हुआ।

शारदा लिपि—आठवीं शताब्दी में जब कुटिल लिपि से देवनागरी लिपि का विकास प्रारंभ हुआ, लगभग उसी समय वह उत्तर-पश्चिम भारत के क्षेत्रों-पंजाब एवं

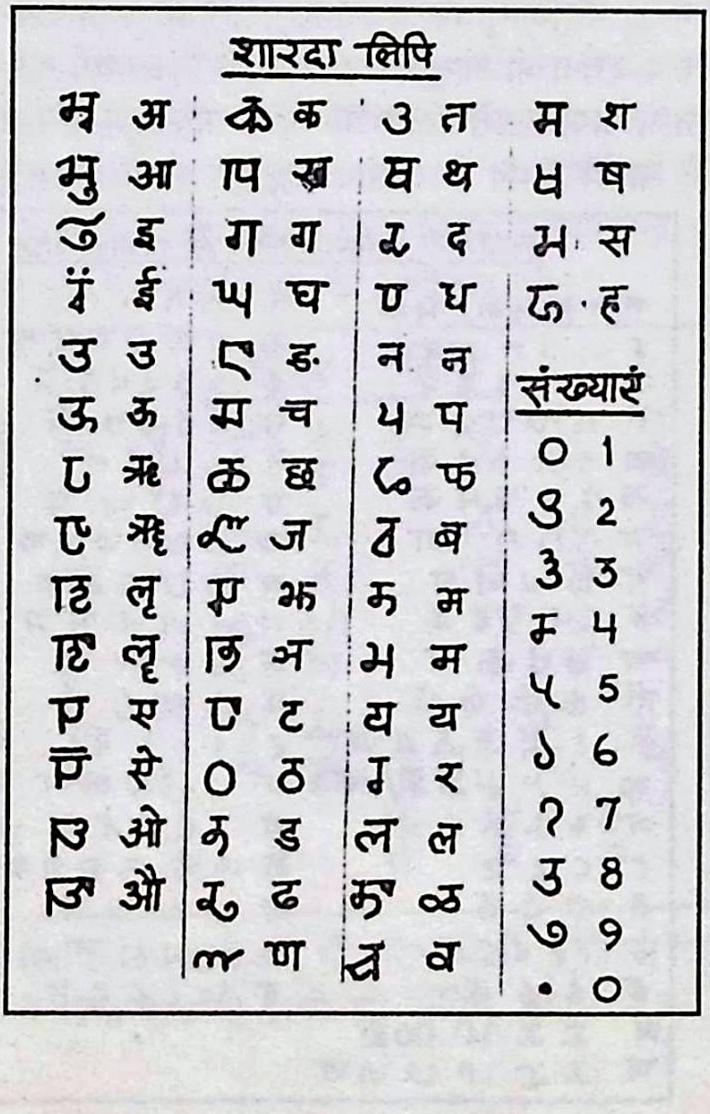

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कश्मीर में कुटिल-लिपि के अन्य रूप में सामने आती है। इस रूप को शारदा लिपि के नाम से जाना जाता है। दसवीं शताब्दी ईस्वी तक यह अपने पूर्ण रुप में विकसित हो गई थी। लगभग दसवीं शताब्दी ईस्वी के चम्बा के सराहां से प्राप्त प्रशस्ति लेख में उसके सम्पूर्ण रूप के उदाहरण मिलते हैं। नागरी लिपि के समान शारदा लिपि के दो शीर्ष वाले वर्णों की भिन्न शीर्ष रेखाएं ग्याहवीं शताब्दी ईस्वी में परस्पर मिलकर एक रेखा बन गई थी। कालान्तर में शारदा लिपि से टकरी लिपि एवं वर्तमान कश्मीरी तथा पंजाबी लेखन शैली का विकास हुआ। टकरी लिपि का प्रयोग स्यालकोट के आस-पास होता था। साधारण व्यापारी इसका प्रयोग करते थे। कुछ भिन्न रुप के साथ हिमालय के निचले प्रदेशों में इसका प्रचार उपलब्ध होता है। चम्बा क्षेत्र की चमेआली, मंडी क्षेत्र में मंडेआली, पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्रों में जौनसारी, कश्मीर के दक्षिण-पूर्व में किश्तवारी, कुल्लुई, डोगरी, सिरमौरी, कोछी, मुल्तानी, लण्डा इत्यादि लेखन की पद्धतियाँ शारदा लिपि की शाखाएं हैं।

दक्षिण भारतीय ब्राह्मी लिपि का स्वरूप

दक्षिण भारतीय शैली में वर्णों में भंग एवं गोलाई का विशेष रुप से प्रयोग किया गया हैं। ये वर्ण त्वरा एवं अनवरतता से लिखे गए हैं। कोमल धरातल पर त्वरा एवं अनवरतता से लेखन के कारण ही वर्णों ने गोलाई का रूप प्राप्त कर लिया। तथापि कोणीय वर्ण रचना भी उपलब्ध होती है। फिर भी गोलाई के रूप को ही कोणीय स्वरूप दे दिया गया है। मध्य-प्रदेश से लेकर दक्षिण तक इस शैली के उदाहरण विभिन्न रूपों में उपलब्ध होते हैं।

तेलुगु-कन्नड लिपि– महाराष्ट्र के दक्षिण भागों— बीजापुर, शोलापुर इत्यादि क्षेत्रों में, आंध्र-प्रदेश के दक्षिणी भाग में, तमिलनाडु के उत्तर-पूर्वी भागों यथा वैल्लौर, कृष्णा, कुर्नूर, गोदावरी, विशाखापट्टनम इत्यादि क्षेत्रों में तेलुगू-कन्नड प्रकार की लेखन शैली का प्रयोग होता है। पल्लवों, कदम्बों, पूर्वी तथा पश्चिमी चालुक्यों, राष्ट्रकूटें इत्यादि के अभिलेखों में यह लेखन शैली प्रयोग की गई है। इस प्रकार की लेखन पद्धति को द्वारा लेखन की प्रवृत्ति ने प्रभावित किया। पांचवी शताब्दी ईस्वी में इस के प्रारम्भिक लक्षण मिलने लगे। इस लेखन-पद्धति का प्रयोग चौदहवी शताब्दी ईस्वी तक उपलब्ध होता है। पाँचवी से चौदहवी शताब्दी के मध्य इसमें पर्याप्त परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। वर्णों में गोलाई, त्वरा से घसीट पद्धति से लेखन के स्वरूप लगभग ग्यरहवीं शताब्दी ईस्वी में इस प्रकार के लेखन पद्धति में शैली-गत विलक्षणता दिखाई देने लगी। इसमें शिरो रेखा का स्वरूप वर्गाकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेलुगु लिपि का विकास

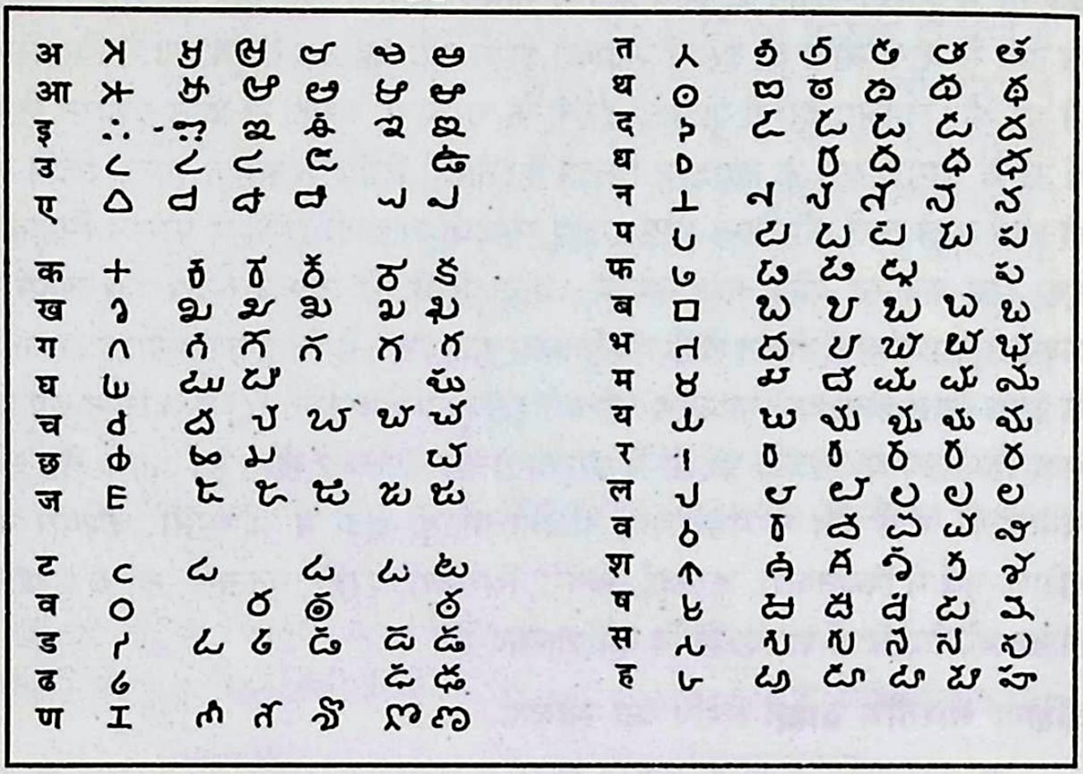

कन्नड लिपि का विकास

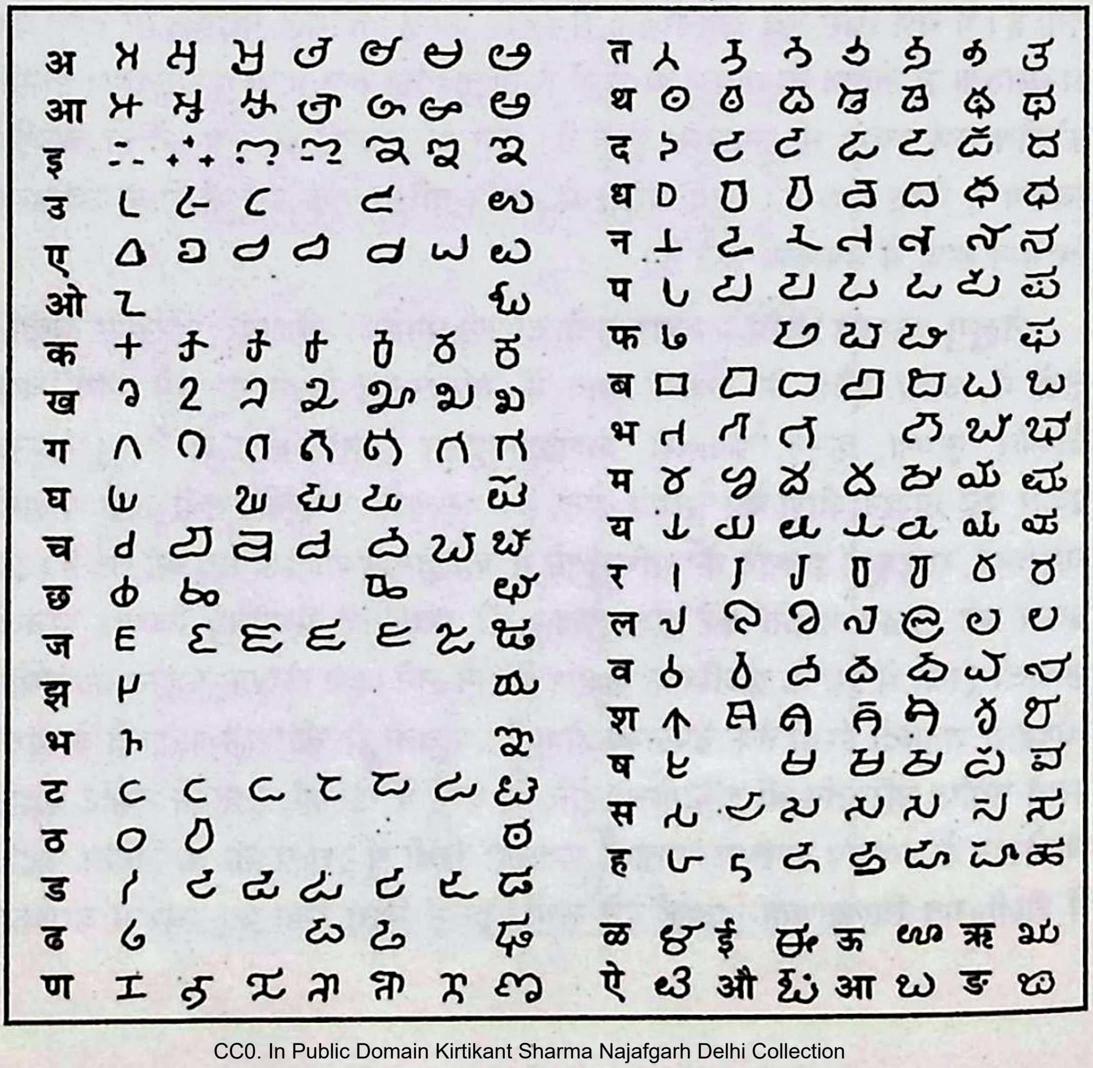

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(Box) है। वर्ण प्रारम्भिक उदाहरणों में समकोण कम और गोलाई अधिक लिए हुए हैं। अनवरतता से लेखन किया गया है। चौहदवीं शताब्दी ईस्वी तक इस समय घटित विलक्षणता ने इसके स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित कर दिया एवं इसका रूप ही बदल दिया। इससे यह वर्तमान तेलुगु एवं कन्नड लिपियों के निकट हो गयी। अतः दो भिन्न लिपियों के विकास का माध्यम बन गई।

ग्रंथ लिपि– तमिलनाडु के उत्तरी भागों मदुरै, त्रिचनापल्ली, सेलम, तिन्नवेल्ली इत्यादि क्षेत्रों में सातवीं शताब्दी ईस्वी में एक भिन्न प्रकार की लेखन पद्धति विकसित हुई। इसका नाम 'ग्रंथ' लिपि दिया गया। इस पद्धति में लिखित लिपि का प्रयोग पन्द्रहवीं शताब्दी तक पूर्ण रूपेण ग्रंथ लिपि के रूप में प्रचलित हो गया। तमिल लिपि में संस्कृत लेखन में आवश्यक पूर्ण वर्णों के अभाव के कारण संस्कृत में लेखन के लिए ग्रंथ लिपि का प्रयोग किया गया। प्रारम्भ में ग्रंथ लिपि तेलुगू-कन्नड लिपि से अत्यधिक समान रूप वाली थी। परन्तु दक्षिण भारतीय लेखन शैली की विशेषताएं एवं अनुग्रह– त्वरा, अनवरतता, खड़ी रेखाएं एवं आड़ी रेखाओं में भंग देने की

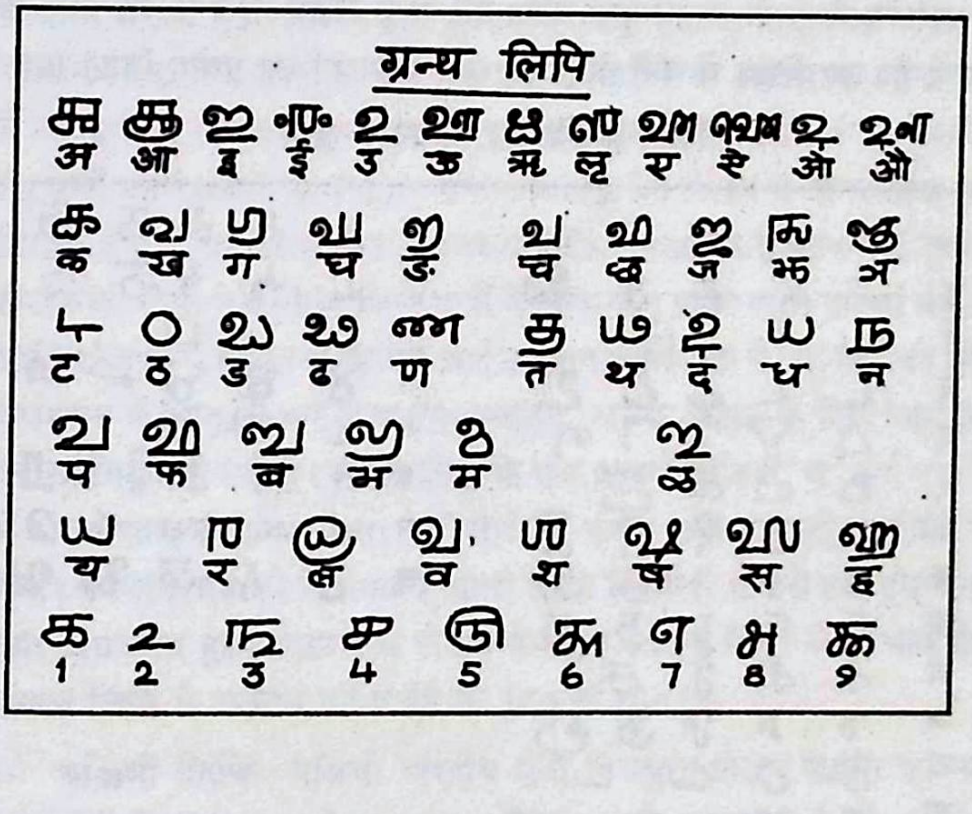

प्रवृत्ति– ने तेलुगू-कन्नड लेखन-पद्धति से इसे भिन्न कर दिया। कालान्तर में ग्रंथ लिपि ने मलयालम लिपि के विकास में प्रभावित किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नागरी लिपि तेलुगू-कन्नड़ लिपि एवं ग्रंथ लिपि-तीनों के मिश्रित रूप में उपलब्ध लेखन-पद्धति को **कलिंग लिपि** का नाम दिया गया है। यह वास्तव में समकालीन प्रचलित लेखन-पद्धतियों का मिश्रित रूप है। सातवीं शताब्दी ईस्वी से इस प्रकार के लेखन के उदाहरण मिलने प्रारम्भ होते हैं। इसका प्रचलन ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी तक रहा। तमिलनाडु के गंजाम एवं चिकाकोल क्षेत्रों में इस प्रकार के लेखन का प्रकार उपलब्ध होता है। प्रारम्भिक स्वरूप में इसमें चौकोर शिरा रेखाओं का प्रयोग दिखाई देता है। वर्ण समकोण रूप में है। कालान्तर में ये त्वरा से लिखित घसीट प्रकार के लेखन का रूप ग्रहण कर लेते हैं। वर्ण समकोण का रूप छोड़कर गोलाकार स्वरूप को धारण कर लेते हैं।

तमिल लिपि–तमिलनाडु, पश्चिमी तट, मालाबार क्षेत्रों में ग्रंथ-लिपि का प्रचलन था। उन्हीं क्षेत्रों में तमिल वर्णों के लेखन के लिए एक भिन्न लिपि उपलब्ध होती है इसे ही तमिल लिपि के नाम से जाना जाता है। सातवीं शताब्दी ईस्वी में तमिल लिपि के प्रारम्भिक स्वरूप के उदाहरण मिलने शुरू होते हैं। इसके वर्ण ग्रंथ लिपि जैसे ही हैं परंतु कुछ वर्णों की रचना उत्तर-भारतीय लिपियों के समान भी मिलती हैं। उत्तर-भारतीय शैली के समान कुछ वर्णन की खड़ी रेखाएं नीचे से बाई ओर मोड़ी नहीं गयी है। इस लिपि में वर्गों के प्रथम एवं पंचमवर्ण का प्रयोग किया गया है।

तमिल लिपि का विकास-क्रम

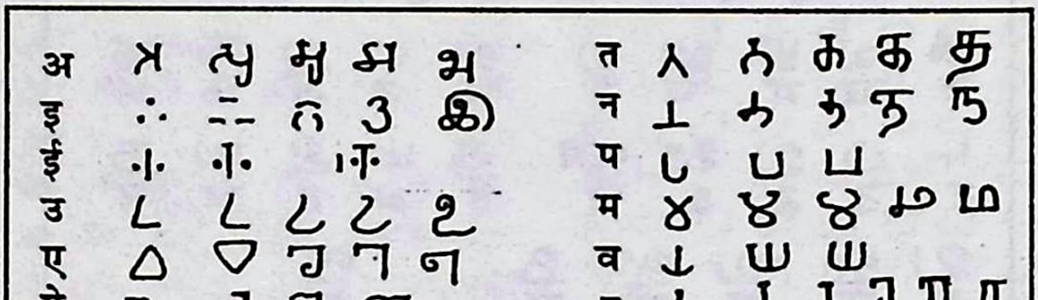

प्रत्येक वर्ग के तृतीय वर्ण-ग, ज, ड, द और ब एवं श का उच्चारण तो प्राप्त होता है परन्तु इनके लिए स्वतन्त्र लिपि-चिह्न प्राप्त नहीं होते। इन्हें अपने वर्ग के प्रथम वर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के चिह्न से ही अभिव्यक्त किया जाता है। 'श' को 'च' वर्ण से लिखा जाता है। भारत में सभी लेखन-पद्धतियों में संयुक्त वर्ण की अभिव्यक्ति वर्णों को एक दूसरे के ऊपर-नीचे लिखकर किया जाता है परन्तु तमिल लेखन-पद्धति में वर्णों को परस्पर साथ में लिखकर अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें प्रथम वर्ण के ऊपर बिन्दु, वक्र रेखा अथवा दायीं और झुकी हुई टेढ़ी रेखा द्वारा हलन्त का रूप प्रकट किया जाता है। **हलन्त की अभिव्यक्ति के लिए वर्ण के ऊपर टेढ़ी रेखा दायीं ओर झुकी रेखा का उपयोग इस समय समस्त भारत में साधारणतया प्रयुक्त प्राप्त होता है।**

तमिल लिपि के द्वारा से घसीट लेखन की प्रवृति से विकसित लेखन शैली वट्टेलुत्तु के नाम से प्रसिद्ध है। इस लेखन-पद्धति का प्रयोग सातवीं शताब्दी ईस्वी से चौदहवी शताब्दी ईस्वी तक उपलब्ध होता है। चोल, पाण्डय इत्यादि नरेशों के लेखों में यह घसीट लेखन शैली प्राप्त होती है। बर्नेल वट्टेलुत्तु को तमिल लिपि का पूर्व रूप मानते हैं। वे इसको किसी विदेशी लिपि का स्वतन्त्र विकास मानते हैं। गौरीशंकर हीराचंद ओझा का मत है कि यह घसीट रूप में लिखित लिपि मात्र ही है।

बंगला लिपि– नागरी लिपि के पूर्वी भारत में प्रचलित रूप से दसवीं शताब्दी ईस्वी में बंगला लिपि का विकास हुआ। नारायण पाल के बादल अभिलेख में इसके सर्वप्रथम उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्राप्त उदाहरणों के आधार पर माना जा सकता है कि वर्णों में सजावट से लेखन की प्रवृत्ति के सर्वप्रथम दर्शन बंगला लिपि में होते हैं। वर्णों की रेखाओं में भंगों का प्रयोग मिलता है। लेखन में अनवरतता तथा त्वरा दिखाई देती है पर उससे उसका स्वरूप घसीट लेखन के समान नहीं हुआ। परन्तु लेखन की शैली ने कतिपय भिन्न वर्णों में अभिन्नता प्रकट करने प्रारम्भ कर दी। 'स' एवं 'ष' वर्णों में लेखन के कारण आई लगभग एकरूपता ने 'ष' वर्ण को बंगाल की वर्णमाला से लुप्त ही कर दिया। फलस्वरुप 'क्ष' के लेखन के लिए 'क' तथा 'स' का संयोग किया गया है। लेखन शैली के एक अन्य प्रवृत्ति में 'ब' वर्ण एवं 'व' वर्ण में भेद समाप्त हो गया। अत: 'व' वर्ण का प्रयोग छठी शताब्दी ईस्वी में लुप्त हो गया। बंगाल लिपि की विशेषताएं नागरी लिपि से बिहार क्षेत्र से होते हुए बंगाली की ओर अग्रसरित हुई। आसाम में लेखन के लिए स्वतन्त्र लिपि के अभाव के कारण बंगला लिपि से आसाम की लिपि का विकास हुआ।

पश्चिमी लिपि– पश्चिमी भारतीय क्षेत्रों में प्रयुक्त लेखन पद्धति का नामकरण पश्चिमी लिपि किया गया है। इस प्रकार के लेखन के उदाहरण पांचवी शताब्दी ईस्वी से प्राप्त होने प्रारम्भ हो गए थे। राजस्थान तथा मध्य-भारत में प्रारम्भ होकर गुजरात, नासिक, सतारा के कुछ भागों में इस प्रकार के लेख मिलते हैं। इसका इन क्षेत्रों में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बंगला लिपि का विकास

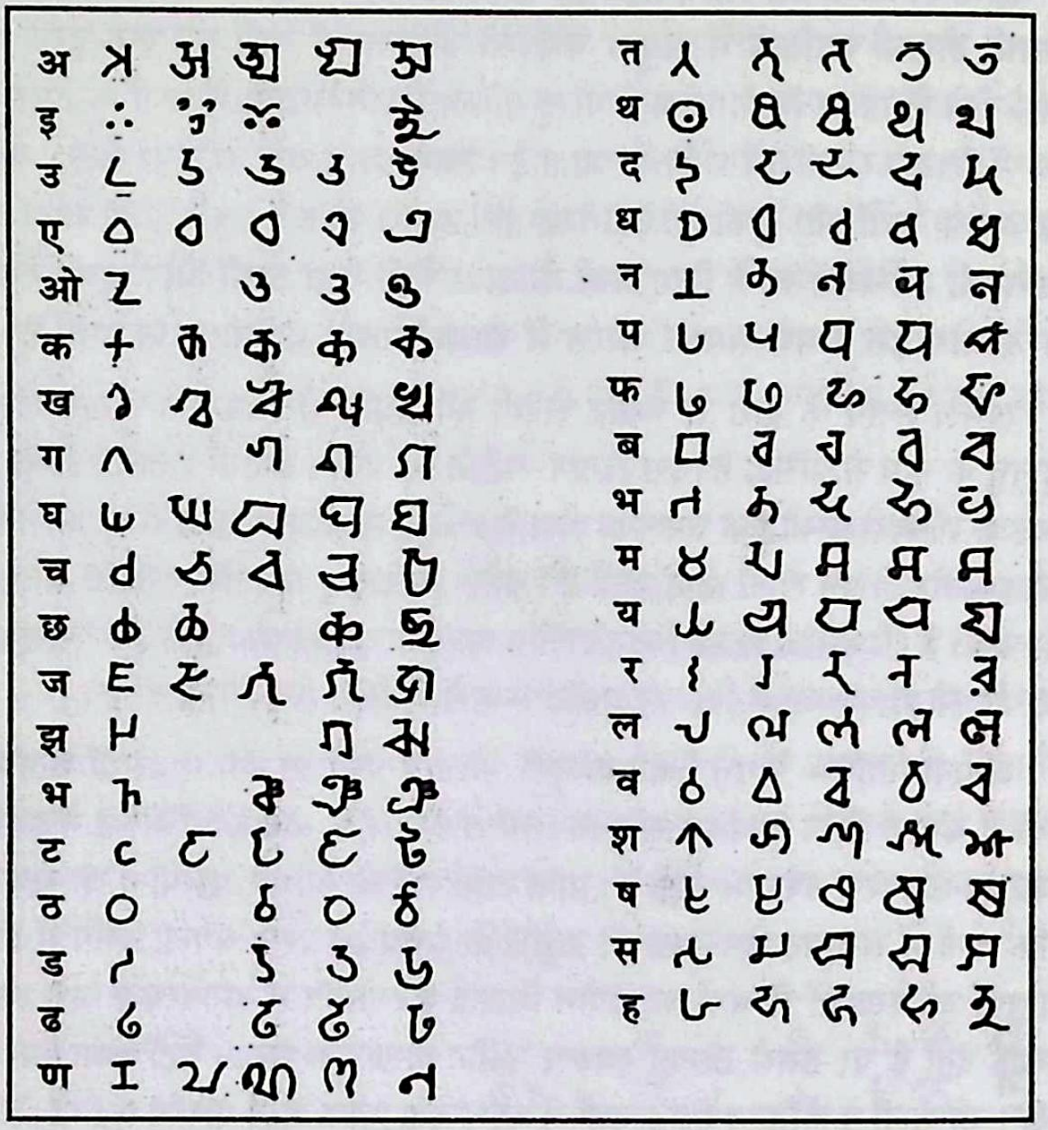

आठवीं शताब्दी ईस्वी तक प्रचलन रहा। पश्चिमी लिपि के रूप में आड़ी तथा खड़ी समकोण रेखाओं के द्वारा वर्णों की रचना की गई है। वर्ण गोलाकार नहीं है पर खड़ी रेखाएं नीचे बाईं ओर मुड़ी हुई है। रेखाओं का मुड़ा होना पश्चिमी लिपि पर दक्षिणी शैली का प्रभाव प्रदर्शित करता है। पश्चिमी लिपि का स्वरूप गुप्तों, वलभी नरेशों, भड़ौच के गुर्जरवंशी, बदामी तथा गुजरात के चालुक्यों, कलचुरियों इत्यादि के अभिलेखों में उपलब्ध होता है। उत्तर-भारत के निकटवर्ती होने के कारण उत्तर भारतीय वर्णों की शैली का पश्चिमी शैली पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वर्णों की रचना में प्रयोग में आने वाले बिंदुओं का स्थान पश्चिमी लिपि में रेखा ने ले लिया। दक्षिणी लेखन शैली के प्रभाव से वर्णों में रेखाओं में भंग का प्रयोग किया गया है। रेखा में ऊपर, मध्य अथवा नीचे या अन्त में ग्रंथियों का भी प्रयोग आ गया है। इनसे रेखाओं का रूप विकृत-सा हो गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

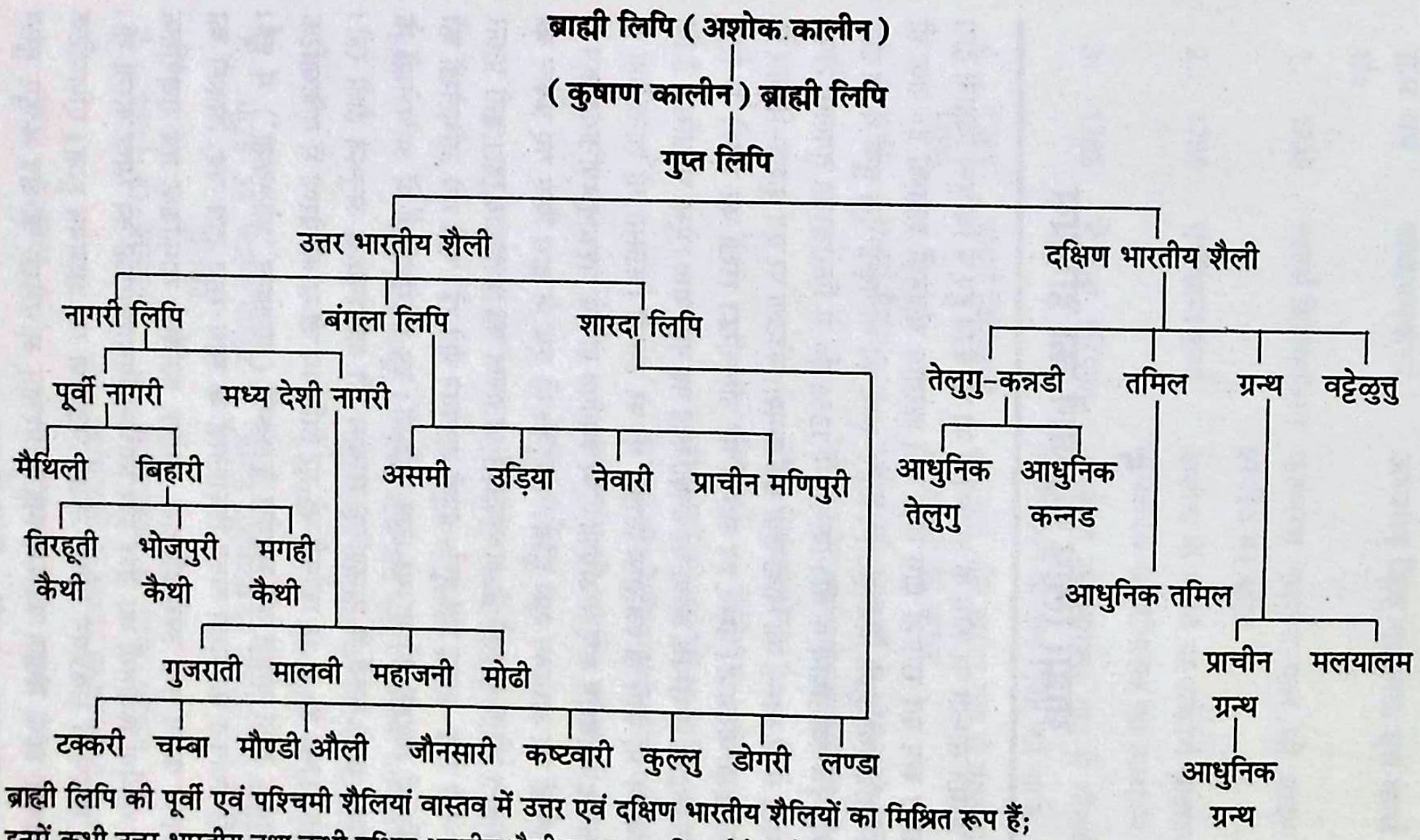

ब्राह्मी लिपि की पूर्वी एवं पश्चिमी शैलियां वास्तव में उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शैलियों का मिश्रित रूप हैं; इनमें कभी उत्तर भारतीय तथा कभी दक्षिण भारतीय शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

5
ब्राह्मी लिपि पढ़े जाने का इतिहास

प्राचीन सामग्री पर शोध के आरम्भ में जो भी कार्य हुए वे विभिन्न विद्वानों द्वारा व्यक्तिगत रूप एवं समाजों द्वारा होता था। भारतीय चौदहवीं शताब्दी ई० तक ही ब्राह्मी लिपि तथा उससे विकसित इन लिपि-रूपों को भी पढ़ना भूल चुके थे जो छठी शताब्दी ई० तक प्रयोग में थीं। दिल्ली में 1356 ई० में फिरोजशाह तुगलक टेपरा एवं मेरठ से दो स्तम्भों को लाया तथा उन्हें क्रमशः कोटला पर एवं कुश्क-शिकार के निकट खड़ा करवाया। उसने इन स्तम्भों पर उल्लिखित लेखों को जानने के लिए अनेक विद्वानों से सम्पर्क किया पर उनको कोई पढ़ नही पाया। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि अकबर ने भी ऐसी ही जिज्ञासा दिखाई थी पर उसकी जिज्ञासा भी शान्त नहीं हो पाई। बाद में विशेष रूप से अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के पश्चात् व्यक्तिगत रूप से अभिलेखों का अध्ययन शुरू हुआ। परन्तु किसी एक के द्वारा किए गए प्रयत्न का ज्ञान अन्य को न हो पाने से अध्ययन में अज्ञानता का अन्धकार रहा। इसी प्रकार जैसे-तैसे शुद्ध-अशुद्ध एवं पूर्ण-अपूर्ण अध्ययन होते रहे। पाये गये अभिलेखों की स्थिति भी विद्वानों को परस्पर ज्ञात नहीं थी। इन परिस्थितियों में अभिलेखों के अध्ययन करने वालों में पारस्परिक सम्बन्ध की आवश्यकता अनुभव होती रही। अन्ततः 1784 ई० में 15 जनवरी को सर विलियम जोन्स की प्रेरणा से एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना कलकत्ता (आजकल 'कोलकता') में हुई। इसकी स्थापना का मुख्य लक्ष्य शिलालेखों के साथ-साथ ताम्र-पत्र, सिक्कों का अध्ययन करना तथा उनसे इतिहास, भूगोल, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक तथा धार्मिक स्थितियों का ज्ञान और विभिन्न विचारधाराओं को स्पष्ट करना था। इसी सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्राचीन लेखन-पद्धतियों का अध्ययन हुआ। एशियटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना के पश्चात् अभिलेखों के क्षेत्र में हुए मुख्य अध्ययन इस प्रकार से प्रसिद्ध हैं-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रम सं०	वर्ष	अध्ययनकर्त्ता	अध्ययन किए गए लेख एवं कार्य
1.	1785	चार्ल्स विल्किन्सिन	पालनरेश नारायण पाल की बादल स्तम्भ प्रशस्ति का पाठन
2.	1785	राधाकान्त शर्मा	अशोक के स्तम्भ पर उत्कीर्ण चाहमान नरेश वीसलदेव के अभिलेख का अध्ययन
3.	1785	जे. एच. हैरिंगटन	नागार्जुनी और बराबर गुहा से मौखरी नरेश अनन्तवर्मन के तीन लेखों की खोज
4.	1785–1789	चार्ल्स विल्किन्स	नागार्जुनी और बराबर गुहा से प्राप्त समस्त अभिलेखों का वाचन
5.	1795	चार्ल्स मैलेट	एलोरा की गुफाओं से छोटे-छोटे अभिलेखों की छाप तैयार की और पढ़ने के लिए विलियम जोन्स के पास भेजा।
			बिल्फर्ड विलियम जोन्स से प्राप्त अभिलेखों की छाप को एक पंडित की सहायता से पढ़ा और विलियम जोन्स को वापिस भेजा. इस पठन की अशुद्धि पर काफी समय तक शंका नहीं हुई।
6a.	1818–23	जेम्स टॉड	राजस्थान, मध्यभारत एवं गुजरात से अभिलखों को एकत्र एवं संग्रह किया
6b.		यति ज्ञान चन्द्र	जेम्स टॉड द्वारा संग्रहित अनेक अभिलेखों को पढ़ा, इनके अनुवाद एवं सारांश को जेम्स टॉड ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान' में प्रयोग किया
7.	1828–33	चार्ल्स वॉल्टर इलियट	कन्नड वर्णमाला का विस्तृत चार्ट तैयार किया
8.	1830–40	बैबिंगटन	ममल्लपुरम से प्राप्त संस्कृत एवं तमिल अभिलेखों के आधार पर वर्णमाला तैयार की।
9.	1834	ट्रॉयर	समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख को आंशिक रूप से पढ़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्र सं०	वर्ष	अध्ययनकर्त्ता	अध्ययन किए गए लेख एवं कार्य
10.	1834	मिल	समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख को पूर्ण रूप से पढ़ लिया.
11.	1835	वॉथन	व़ल्लभी नरेशों के अनेक दान-पत्रों को पढ़ा
12.	1837	मिल	भीतरी से प्राप्त स्कन्दगुप्त के अभिलेख को पढ़ा
13.	1837	प्रिंसेप	सांची के स्तूप के निकट प्राप्त लेखों से अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि को स्पष्ट किया.
14.	1837	हार्कनेस	दक्षिण भारत में प्रचलित प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं की वर्णमाला तैयार की
15.	1837-38	प्रिंसेप	528 ई०पू० से 1200 ई० तक की वर्णमाला तैयार की; इसमें 1800 वर्षों में आए भारतीय लिपि में परिवर्तनों का तुलनात्मक चार्ट तैयार किए
16.	1874	बर्नेल	चतुर्थ से चौदहवीं शताब्दी ई० तक के अभिलेखों पर आधारित 'एलिमैण्ट्स ऑफ साऊथ इण्डियन पेलियोग्राफी' प्रस्तुत की.
17.	1877	कनिंघम	अशोक के अभिलेखों पर आधारित 'कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम (प्रथम अंक) प्रकाशित किया।
18.	1878	जॉन फेथफुल फ्लीट	गुप्त एवं समकालीन नरेशों के अभिलेखों के आधार पर 'कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम' (तृतीय अंक) का प्रकाशन किया.
19.	1894	गौरीशंकर हीरा चन्द्र ओझा	हाथ से बनी वर्णों की प्रतिलिपि युक्त प्राचीन लिपिमाला का प्रकाशन
20a.	1896	ब्यूलर	वर्णों की प्रतिलिपि के चार्ट 'इण्डियन पेलियोग्राफी' में प्रकाशित किए.
20b.		हुल्त्ज	लिपियों के क्षेत्रीय-विभाजन का विश्लेषण किया.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्पश्चात् अभिलेखों को उनके वास्तविक रूप में अध्ययन का कार्य प्रारम्भ किया गया। पुरालिपिज्ञाताओं ने लिपियों का वर्गीकरण विभिन्न रूपों में किया। हुल्त्ज ने जिस क्षेत्रीय विभाजन के विश्लेषण का प्रयास किया, ओझा ने उसे स्वीकार नहीं किया। ओझा की मान्यता थी कि समय एवं स्थान की भिन्नता से लिपियों के स्वरूप में परिवर्तन आ सकता है पर हर स्थिति में ऐसा होना अनिवार्य नहीं है। एक ही स्थान पर किसी समय-विशेष में एक ही वर्ण के भिन्न-भिन्न रूप भी उपलब्ध हो जाते हैं। ब्यूलर ने भी इस मत का समर्थन किया। बाद में हुए लिपियों के अध्ययन के क्षेत्र में ओझा और ब्यूलर का बहुतायत से अनुसरण करके ही कार्य हुए।

अभिलेखों के पाठन के पश्चात् उनका प्रकाशन विभिन्न पद्धतियों से किया गया। इनमें कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम के निम्नलिखित अंक मुख्य हैं-

अंक	संग्रहकर्त्ता	अभिलेख (ये प्रकाशन के शीर्षक नहीं हैं)
I.	हुल्त्ज	अशोक के अभिलेख
II. (प्रथम भाग)	स्टेन कोनो	खरोष्ठी में लिखित अभिलेख
II.	(द्वितीय भाग) महेन्दले	
III.	जॉन फेथफुल फ्लीट	गुप्त नरेश एवं उनके समकालीन नरेशों के अभिलेख
IV. (दो भाग)	वी. वी. मिराशी	कलचुरी शासकों के एवं चेदी संवत् के अभिलेख
V.	वी.वी. मिराशी	वाकाटक शासकों के अभिलेख
VI.	वी.वी. मिराशी	सिलहर नरेशों के अभिलेख
VII. (भाग एक)	एच. वी. त्रिवेदी	परमार, चन्देल, विजयपाल, यज्ञपाल नरेशों का राजनैतिक इतिहास
VII. (भाग दो)	एच.वी. त्रिवेदी	मालव के परमार, चन्द्रवती, बगड, और जतौर के अभिलेख
VII. (भाग तीन)	एच.वी. त्रिवेदी	विन्ध्य प्रदेश के चन्देल, ग्वालियर के कच्छपघाट, विजयपाल राजवंश, नरवार के यज्ञपाल के अभिलेख एवं अन्य अभिलेख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजवंशों तथा क्षेत्र-विशेष से सम्बन्धित अभिलेखों के अध्ययन की परम्परा भी चल निकली। इसमें वर्तमान राजनैतिक राज्य-सीमाओं पर आधारित अध्ययन भी प्रकाशित हुए। भारतीय पुरातत्त्व विभाग ने 38 अंकों में एपिग्राफिया इण्डिका में संस्कृत में उत्कीर्ण अभिलेखों का प्रकाशन किया। इसका लक्ष्य समय, क्षेत्र, राजवंश इत्यादि से हट कर मात्र अभिलेखों का विशद अध्ययन का संकलन है। इसी प्रकार साऊथ इण्डियन इन्स्क्रिपशन्स का भी 20 अंकों में संकलन प्रकाशित किया गया।

अभिलेख-शास्त्र एवं पुरालिपि शास्त्र के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देने वाले कुछ मुख्य विद्वानों का परिचय

जॉन फैथफुल फ्लीट

जॉन फेथफुल फ्लीट का जन्म 1847 में चिस्विक नामक स्थान पर हुआ था लंदन के मर्चैण्ट टेलरस् स्कूल में उनकी शिक्षा हुई। भारतीय सिविल सर्विस में 1865 में उनका चयन हुआ। वह 1867 में मुंबई आए। तत्पश्चात् 1897 में पद-निवृत होने के पूर्व 1883 में भारतीय पुरालिपि-विज्ञ के रूप में उन्होंने कार्य किया। बम्बई रेजिडेन्सी में अपने विभिन्न कार्यों को करते-करते वे अभिलेखों से सम्बन्धित कार्यों में भी व्यस्त रहे। वह अपने प्रयत्नों के फलस्वरुप अभिलेखों के अध्ययन के क्षेत्र में पारंगत हो गए। संस्कृत और कन्नड़ भाषा और उस में लिखित भाषा साहित्य, ज्योतिष, कालक्रम, ऐतिहासिक भूगोल, भाषा-शास्त्र एवं अभिलेखों के गहन अध्ययन ने उन्हें अपने में सम्पूर्ण बना दिया। प्रारम्भ में उन्होंने जर्नल ऑफ द बौम्बे ब्राँच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में लेख लिखे। इण्डियन एण्टिक्वेरी के 1872 से प्रकाशन के प्रारम्भ से ही वे इसमें रुचि लेकर कार्य करते रहे। इस पत्रिका के संयुक्त डायरेक्टर के रूप में 14 से 20 वें अंको पर कार्य भी किया। उन्होंने 1878 में 'पालि संस्कृत एण्ड ओल्ड कन्नड इन्स्क्रिप्शन' का संग्रहण एवं संपादन किया। वे पुरालिपिशास्त्र अभिलेख-शास्त्र के क्षेत्र में पूणकालीन दत्तचित्त हो गए। उन्होंने 400 ई० से लेकर आगे के समय तक के सम्पूर्ण भारत में उपलब्ध अभिलेखों के अद्वितीय समालोचनात्मक अध्ययन किए। ये सभी कार्य 1888 में उनके द्वारा संपादित 'कार्पस इन्स्किप्शनम् इण्डिकेरम्' अंक तीन के अद्वितीय कार्य के रूप 'इन्स्क्रिन्प्शनम् ऑफ द अर्ली गुप्त किंग्स एण्ड देअर सक्सैसर्स' के सामने सम्पूर्ण के सामने घूमिल हो गए। इसके पश्चात् 1895 में 'डायनेस्टी ऑफ द कनरीज इन्स्क्रिप्शन्स इन द बौम्बे प्रैजीडेन्सी' लेख को 'गजेटियर ऑफ द बॉम्बे प्रेजिडेंसी' के प्रथम अंक भाग एक में प्रकाशित किया। वे 'एपिग्राफिया इण्डिका' के विभिन्न अंकों में तथा अन्य पत्रिकाओं में भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह समय-समय पर अभिलेखों के अध्ययन अपना योगदान देते रहे। इंग्लैंड लौटने के पश्चात् भी वे अपनी रुचि के इस कार्य में लगे रहे। उनके विशेष प्रयत्नों के कारण 1907 में उन्हें 'रॉयल एशियेटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड' का मानद सचिव नियुक्त किया गया। वहां की पत्रिकाओं में उन्होंने अनेक शोध पत्र प्रकाशित किए। उनके विशेष लाघव के कारण इस सोसाइटी ने उन्हें 1912 में स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया। वे फरवरी 1917 में मृत्यु-पर्यन्त अपने अध्ययन कार्य में लगे रहे। भारतीय कालगणना एवं अभिलेखों के अध्ययन को दृढ नींव प्रदान करना उनका अद्वितीय योगदान है।

ब्यूलर

जॉन जार्ज ब्यूलर का जन्म जुलाई 1837 में हैनोवर, जर्मनी में हुआ था। गोट्टिनजन विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए 1858 में उन्होंने पी. एच. डी की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने अपने अध्यापक प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री एवं लोककथा विशेषज्ञ वेन्फे के सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण की। उनके प्रारंभिक कार्य तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और वैदिक माइथोलोजी से सम्बन्धित थे जो 1862 तथा 1864 में प्रकाशित हुए। उनका एक लेख 1864 में 'ऑन द ओरिजन ऑफ द संस्कृत लिंगुअल्स्' में प्रकाशित हुआ। शीघ्र ही उन्होंने अपना अध्ययन का क्षेत्र तुलनात्मक भाषा-विज्ञान से अन्य दिशाओं की ओर घुमा दिया। ऑक्सफोर्ड और लंदन के पुस्तकालयों में अध्ययन करते हुए मैक्स म्यूलर के संपर्क में आए। फरवरी 1863 एल्फिंस्टन कॉलेज बम्बई में ओरियण्टल लैंगुएज के प्रोफेसर बने। इसी वर्ष मुम्बई विश्वविद्यालय में फैलो नियुक्त हुए। जनवरी 1866 पूना स्थित डैक्कन कॉलेज में वे प्राचीन इतिहास एवं अंग्रेजी के प्रोफेसर बन गए। वे इण्डियन एण्टिक्वेरी पत्रिका से जुड़े। इसके साथ वे आजीवन जुड़े रहे। इसी बीच 1888 से 1894 तक एपिग्राफिया इण्डिका में भी अपने कार्यों एवं अध्ययन से योगदान दिया। वे पाण्डुलिपि, पुरातात्त्विक खोज, अभिलेखों का वाचन, भारतीय भाषा-शास्त्र, भारतीय पुरालिपि साहित्य का इतिहास-प्रत्येक क्षेत्र में वे स्पष्टतः अद्वितीय थे। उनका पाण्डुलिपियों का अपना संग्रह था। इनमें से 321 पाण्डुलिपियाँ लन्दन की इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी को तथा अन्य 177 पाण्डुलिपियों को बर्लिन स्थित रॉयल लाइब्रेरी को भेंट कर दिया था। माइथोलोजी-वैदिक और लौकिक संस्कृत, भारतीय प्राचीन साहित्य, पालि, जैन एवं बौद्ध साहित्य, धर्मशास्त्र, भूगोल, काल-निर्धारण पद्धति, अभिलेख शास्त्र, पुरातत्व, पुरालिपि, आधुनिक एवं प्राचीन इतिहास एवं दर्शन, धार्मिक, राजनीतिक, एपिक व्याकरण,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भाषाशास्त्र इत्यादि सभी क्षेत्र उनसे अछूते न थे। भारतीय पुरालिपि के अध्ययन के क्षेत्र में भारतीय लिपियों के अध्ययन के उनके सामने कोई अन्य विद्वान् टिकता दिखाई नहीं देता। भारत में लेखन कला की प्राचीनता सम्बन्धी तर्क, खरोष्ठी एवं ब्राह्मी लिपियों के उद्‌गम से सम्बन्धित चर्चा, ब्राह्मी लिपि का प्राचीन रूप, उसके उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय प्रारूप, अभिलेखों और पाण्डुलिपियों की लेखन से सम्बन्धित विवरण, इनके लेखन के लिए आवश्यक सामग्री, पाण्डुलिपियों का संग्रह एवं संरक्षण, लेखक इत्यादि विषयों का विषद् अध्ययन इनके कार्यों की विशेषता है। इन्होंने विभिन्न समयों में प्रचलित लिपियों की 17 तालिकाएं प्रस्तुत की हैं जिनसे लिपि का गहन अध्ययन करने वालों को प्रेरणा प्राप्त होती है। अप्रैल 1898 में नौका विहार करते हुए हुई अज्ञात दुर्घटना से उनकी मृत्यु हुई।

प्रिंसेप

प्रिंसेप एक भारतीय विद्या विज्ञ थे। उनका जन्म 1799 में एसैक्स, इंग्लैंड में हुआ था। त्वरित-निर्णय, व्युत्पन्न-मति एवं स्पष्टता से कार्य करने में सक्षम प्रिंसेप अद्वितीय विश्लेषक थे। भारत में उनकी नियुक्ति कलकत्ता तथा बाद में बनारस स्थित टकसाल में हुई। परन्तु वहां के कार्य से असंतुष्ट होने से एक बार वे वापिस इंग्लैंड चले गए। पुनः भारत आकर बनारस में गंगा के किनारे समय व्यतीत करना और शास्त्रीय संगीत में शौक उनकी रुचि बन गए। वे अन्तरिक्ष विषयक विषयों तथा धातु शोधन के क्षेत्र में विशेषज्ञ थे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए उन्होंने अपने भाई विलियम प्रिंसेप के साथ मिलकर बनारस के घाटों के अनेक रेखा चित्र बनाए। प्राच्य-विद्या, पुरातत्व, प्राचीन सिक्कों से सम्बन्धित विषयों एवं भाषाशास्त्र में उनका विशेष रुझान था। अपने कार्यालय का कार्य शीघ्रता से समाप्त करके प्राचीन सिक्कों का विशेष सर्वेक्षण करते थे। इसी के साथ-साथ उनका ध्यान अभिलेखों पर भी गया। वे सिक्कों एवं अभिलेखों में पारस्परिक सम्बन्ध परखने लगे। वे उन सिक्कों एवं अभिलेखों का सम्बन्ध स्मारकों से जोड़ने का प्रयास करते थे। इस शृंखला में उन्होंने वर्णों का क्रम-निर्धारण करने में सफलता प्राप्त की। इसी क्रम में वे वर्णों का सम्बन्ध विभिन्न राजवंशों, उनके स्थान तथा समय के साथ जोड़ने में भी सफल हो गए। इस स्थिति में उन्होंने सर विलियम जोन्स के पहले से जारी अधूरे कार्यों को पूरा कर दिया। तत्पश्चात् उनका ध्यान तब तक अज्ञात अभिलेखों की ओर गया। उनकी लिपि ज्ञात हो चुकी लेखन कला से भिन्न थी। उन्होंने उन लेखों को यूनानी लेखन पद्धति से प्रभावित संस्कृत में लिखित मानकर अध्ययन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया गया। लगभग दस वर्ष के गहन परिश्रम के पश्चात् प्रिंसेप ने पाया कि वे यूनानी लेखन तथा कला एवं संस्कृति से युक्त नहीं है। उन्होंने 1837 में सांची के स्तूप के क्षेत्र में स्थित छोटे-छोटे लेखों में पाया कि उनमें अंतिम दो अक्षर एक से हैं तथा उन से पूर्व प्रिंसेप ने 'स' की संभावना की। अन्तिम दोनों अक्षरों में से प्रथम अक्षर के साथ 'आ' स्वर चिह्न तथा दूसरे के साथ ऊपर अनुस्वार है इस प्रकार 'दानं' का अनुमान लगा कर पढ़ लिया। प्रिंसेप ने इसे ब्राह्मी लिपि का प्राचीन रूप स्थापित किया। ये लेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक के समय थे। इन लेखों के आधार पर ब्राह्मी लिपि के समस्त रूपों की पहचान हो गई। एवमेव समस्त रूपों की सम्पूर्ण वर्णमालाएं तैयार हो गई। ब्राह्मी लिपि के साथ-साथ खरोष्ठी लिपि की सम्पूर्ण वर्णमाला तैयार करने का श्रेय भी जेम्स प्रिंसेप को ही जाता है। वह बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के संस्थापक सम्पादक थे। अप्रैल 1840 में लंदन में इनका देहावसान हो गया।

कनिंघम

कनिंघम ब्रिटिश सेना में अभियन्ता थे। भारतीय संस्कृति के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी। प्रिंसेप से प्रेरणा पाकर उनमें भारतीय प्राचीन स्मारक एवं इतिहास के क्षेत्र में रूचि उत्पन्न हुई। उन्होंने पुरातन महत्व के स्थानों के उत्खनन का कार्य किया। कनिंघम ने ह्यूनसांग तथा फाह्यान द्वारा अपनी यात्रा के उल्लेखित मार्ग को स्मारकों की खोज का आधार बनाया। इसी प्रयत्न में उन्होंने तक्षशिला, सांगल, अहिच्छत्र, बैराट, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वैशाली, नालंदा जैसे स्थानों को चिह्नित करने में सफलता प्राप्त की। उत्तर भारत के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों-सारनाथ, संकिस्स, सांची इत्यादि का उत्खनन एवं अध्ययन प्रस्तुत किया। परन्तु धन के अभाव में पुरातात्विक अनुसंधान में बाधाएं आने के कारण वे 1865 में इंग्लैंड लौट गए। पुनः शीघ्र ही वे भारत वापिस आ गए। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर वायसराय लॉर्ड कैनिंग से भारत में पुरातत्व से सम्बन्धित विभाग को स्थापित करने का अनुरोध किया। उनकी इस अनुशंसा पर 1878 में भारतीय पुरातत्व विभाग की स्थापना हुई। इसका सर्वप्रथम डायरेक्टर कनिंघम को ही बना दिया गया। अपने कार्यों के फलस्वरूप 1871 में उन्होंने Ancient Geography of India का प्रकाशन किया। तत्पश्चात् 1877 में कनिंघम ने कार्पस इन्स्क्रिप्शन इण्डिकेरम के प्रथम अंक को प्रकाशित किया। इसमें अशोक के अभिलेखों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कनिंघम में 1883 में भारतीय संवतों से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण रचना प्रस्तुत की। अंततः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

1885 में भारतीय आर्क्योलोजिकल सर्वे से सेवा-निवृत्त होकर वे लन्दन लौट गये। वहां पर अपने जीवन के अंत तक उन्होंने भारत के पुरातात्विक अनुसंधान एवं लेखन-कार्य को जारी रखा।

डी०सी० सरकार

डी० सी० सरकार आधुनिक पुरालिपि-शास्त्रियों में प्रमुख हैं। अभिलेखों से सम्बन्धित विभिन्न विषय-वस्तुओं पर उन्होंने विस्तृत गहन अध्ययन किया है। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के कारमाइकेल प्रोफेसर होने के साथ-साथ भारत के पुरातत्व-विभाग की अभिलेख-शास्त्रीय शाखा में राजकीय पुरालेख-वेत्ता के पद पर सुशोभित रहे। उनकी सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस पुस्तक दो भागों में प्रकाशित भारतीय अभिलेखों का अद्वितीय संग्रह है। इसके प्रथम भाग में छठी शताब्दी ई० पू० से छठी शताब्दी ई० तक के भारत तथा भारत की सीमा में जुड़े देशों के अभिलेखों का संग्रह किया गया है। इस पुस्तक के दूसरे भाग में छठी शताब्दी ई० के बाद के विभिन्न राजवंशो के अभिलेखों का संग्रह है। इनकी एक अन्य रचना इंडियन एपीग्राफी प्रमुख अभिलेख-शास्त्रीय कार्य है। इसमें भारतीय पुरालेख-शास्त्र के विभिन्न पक्षों का विवेचन करते हुए अभिलेख तथा उनके साक्ष्य, उनकी भाषा, लेखन-सामग्री, उनका संरक्षण, अभिलेखों के प्रकार, तिथ्यंकन पद्धति तथा सुदूर प्रदेशों में भारतीय पुरा-लेखन विद्या आदि विषयों का विशेष अध्ययन प्राप्त होता हैं। अभिलेख संग्रह करते हुए उन्होंने भारतीय अभिलेखों में पाए जाने वाले शब्दों के कोश को भी तैयार कर दिया। डी० सी० सरकार ने उस कोश को 'इंडियन एपिग्राफिकल ग्लॉसरी' के नाम से प्रकाशित किया। भारतीय प्राचीन अभिलेखों का अध्ययन करते हुए उन्होंने अनेक गहन अध्ययन अवकाश विभिन्न पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत किया, यथा- अर्ली-पल्लव, सक्सैसर्स ऑफ सातवाहनाज़ इन लोअर डैक्कन, इन्स्किप्शन्स ऑफ अशोक, मास्की इन्स्क्रिप्शंस ऑफ अशोक, गुहिलास ऑफ किष्किन्धा, कोस्मोग्राफी एण्ड जयोग्राफी इन अर्ली इंडियन लिटरेचर, स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑफ एन्श्येण्ट एण्ड मेडिवियल इण्डिया। उन्होंने भारतीय सिक्कों पर अपना अध्ययन स्टडीज इन इण्डियन कॉइन्स में प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त एपीग्राफिया इण्डिका जैसी पत्रिकाओं में अनेक अभिलेखों का विस्तृत अध्ययन, मूल-पाठ, अनुवाद, व्याख्या, टिप्पणियां आदि प्रस्तुत करके अभिलेख शास्त्र को अपना महान् योगदान दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुल्त्ज़

हुल्त्ज़ का जन्म डरेस्डन में मार्च 1857 में हुआ था। बॉन और लीपजिग में उन्होंने भारतीय दर्शन की शिक्षा ग्रहण की। वियेना की ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट में उन्होंने कार्य करना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् भारतीय परम्पराओं से प्रभावित होकर 1984 85 में उत्तरी भारत तथा कश्मीर का भ्रमण किया। इस भ्रमण में उन्होंने अनेक अभिलेख तथा हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह किया। सन् 1886 में उन्हें मद्रास प्रेसिडेंसी में अभिलेख शास्त्र विभाग में सुपरिटेण्डेण्ट नियुक्त किया गया। इस अवधि में हुल्तज़ ने 'साऊथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स, तमिल एण्ड संस्कृत' के प्रथम अंक का सम्पादन किया, जिसको मद्रास सरकार ने 1890 में प्रकाशित किया। इसके प्रारम्भिक अंकों से पल्लव, चोल तथा चालुक्य शासकों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। इसके दूसरे अंक में तंजौर के मंदिरों में पाए गए अभिलेखों को 1891 से 95 तक तीन भागों में प्रकाशित किया। इन अभिलेखों के सम्पादन में ऐतिहासिक तथ्यों, व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ, तुलनात्मक अध्ययन इत्यादि देते हुए ब्यूलर एवं फ्लीट के द्वारा अपनाए गए विश्लेषण के मार्ग को अपनाया। हुल्त्ज़ 1903 में एपिग्राफिस्ट के पद के कार्य-भार से मुक्त हुए। तत्पश्चात् मृत्यु-पर्यन्त (1927 तक) वे हॉल विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। उन्होंने अशोक के अभिलेखों का विशेष विशद् अध्ययन किया। अशोक के लेखों पर किए गए उनके कार्य के मुकाबले में आज तक कोई भी गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत नहीं हो पाया है। वे संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत के भी विद्वान् थे। उन्होंने बौधायन धर्मसूत्र (1884), वसन्तराज शकुन (1879), परिजातमञ्जरी (1906) जैसे ग्रंथों पर कार्य किया तथा शिशुपालवध (1926) का जर्मन में अनुवाद किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

6

ब्राह्मी लिपि में परिवर्तन–कारण एवं दिशाएँ

समय और स्थान के प्रभाव से ब्राह्मी लिपि भी अछूती नहीं रही। इसमें व्यापक परिवर्तन हुए। ब्राह्मी लिपि भारत वर्ष की प्राचीनतम ज्ञात लिपियों में से एक हैं। इसके विस्तृत उदाहरण अशोक के लेखों में उपलब्ध होते हैं। यह लिपि भारत के विस्तृत भू–भाग पर एक समान रूप से प्रचलित मिलती है। इसकी रूप रचना कुछ उदाहरणों को छोड़कर प्रत्येक स्थान पर एक सी ही है। फिर भी कुछ वर्णों की रचना में भिन्नता प्राप्त हो जाती है। इसकी समान रूप–रचना के कारण ऐसा मत भी प्रकट किया गया कि अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र से लेख लिखकर विभिन्न स्थानों पर भेज दिए गए जहाँ पर लेखकों तथा उत्कीर्ण–कर्त्ताओं ने उन्हें स्तम्भों, शिलाखण्डों इत्यादि पर अपनी लेखन–प्रवृत्ति के अनुसार उत्कीर्ण कर दिया। इस सम्भावना के संदर्भ में आपत्ति प्रकट करते हुए मत दिया गया कि जिस स्थान पर किसी लेखन पद्धति को कोई जानता ही न हो उसे वहाँ लिखवाना व्यर्थ है क्योंकि वहाँ उसे कोई पढ़ ही न पाएगा। जब अशोक ने विभिन्न स्थानों पर अपने लेख लिखवाए हैं तो अवश्य ही वहां के निवासी उन्हें पढ़ना जानते होंगे। अशोक के लेखो में उपलब्ध कुछ वर्णों के विभिन्न रूपों को देखकर विद्वानों ने मत प्रकट किया कि अशोक के समय ब्राह्मी लिपि के दो भेद–उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय होने शुरू हो चुके थे पर वर्णों के जिन रूपों के आधार पर इन भेदों को प्रस्तुत किया गया है वे रूप किसी स्थान विशेष तक सीमित नहीं है। अतः यही सम्भावना बनती है कि ये व्यक्तिगत लेखन के कारण उत्पन्न हुए विभिन्न रूप हैं। अशोक के लेखों में वर्णों की रचना ज्यमिति आकृतियों पर आधारित पर प्रतीत होती है जैसे सरल रेखा, वक्र रेखा, कोण, त्रिभुज तथा वृत। अशोक के पश्चात् साम्राज्य के विघटन के कारण भारतीय भू–भाग छोटे राज्यों में बंट गया। लेखन राजकीय कार्य तक ही सीमित नहीं रहा। वह लोगों में फैल गया। अतः लेखन का रूप ही परिवर्तित होने लगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेखन के रूप में परिवर्तन को जानने के लिए लेखन की पद्धति समझनी आवश्यक है। लेखन कार्य के लिए ठोस एवं कोमल आधार उपलब्ध होते हैं। शिलाखण्ड, विभिन्न प्रकार के स्तम्भ, धातु के मोटे पत्र इत्यादि लेखन के ठोस आधार हैं। वृक्षों के पत्र, सोने तथा चाँदी जैसे बहुमूल्य धातुओं के पत्र लेखन के कोमल आधार हैं। इन दोनों ही प्रकार के आधारों पर लेखन के लिए मात्र कुछ भाग तक तो सामग्री समान होती है पर सभी स्थानों पर यह एक समान नहीं हो सकती। लेखन की प्रक्रिया में लेखक पहले रंग अथवा स्याही से तूलिका अथवा लेखनी (ब्रश अथवा कलम) की सहायता से लिख देता है तत्पश्चात् उत्कीर्णक उस पर वैसे का वैसा ही खोद देता है। यह प्रक्रिया ठोस एवं कोमल दोनों प्रकार के आधारों पर समान रूप से अपनायी जाती थी। इसके बाद की प्रक्रिया भिन्न हो जाती है। ठोस आधार पर लेखन के पश्चात् छैनी–हथौड़े से वर्णों को खोद दिया जाता था। कोमल आधार पर वर्ण उत्कीर्ण करने के लिए शलाका (stylus) का उपयोग किया जाता था। ठोस एवं कोमल दोनों आधारों पर तूलिका एवं लेखनी समान प्रभाव छोड़ती थी। लेखन क्रिया जहाँ से प्रारम्भ होती थी वहाँ पर रंग अथवा स्याही अधिक प्रभाव छोड़ती थी। अतः वर्ण की रूप–रचना जिस स्थान पर प्रारम्भ होती थी वहां पर वर्ण का भाग अपेक्षा–कृत अधिक मोटा होता था। तूलिका अथवा लेखनी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती रेखा अपेक्षाकृत पतली रह जाती थी। प्रारंभिक मोटे स्थान को उत्कीर्णकों ने

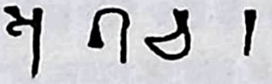

मोटा खोदना प्रारम्भ कर दिया तथा पतले रूप को पतला खोदा गया। इससे निम्नलिखित रूप प्रस्तुत हुआ। इस प्रक्रिया के कारण खड़ी सरल रेखा अपेक्षा–कृत लम्बी होने लगी। लेखन में अनवरतता तथा तूलिका के ऊपर उठने में हुई क्षाणिक देरी के कारण खड़ी रेखा अंत में बायीं ओर झुकाव उत्पन्न हो गया। प्रथम शताब्दी ईस्वी में वह रूप

स्पष्टतया उपलब्ध होता है। देखने में मोहक रूप बनाने के लिए उत्कीर्णक के लिए यह अतिरिक्त परिश्रम–साध्य कार्य रहा होगा। ऐसी सम्भावना अवश्य रही होगी कि उसने इस प्रकार की रूप–रचना का विरोध किया होगा इसी के फलस्वरुप जहाँ पर ठोस आधार पर लेखन–कार्य होता था वहां वर्णों की लंबाई कम हो कर पुनः पुराने स्तर पर आ गई।

इसी समय में एक अन्य प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। ठोस धरातल पर छैनी–हथौड़े

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से लेखन कार्य में सजावट की रुचि आने लगी जबकि कोमल धरातल पर सुए से लेखन के कारण घसीट-पद्धति उत्पन्न होने लगी। सजावट की रुचि ने वर्णों में कोणीय रूप को प्रस्तुत किया वहीं घसीट पद्धति वर्णों में गोलाई ले आई। इन दोनों रूपों से ब्राह्मी लिपि में दो भेद उत्पन्न हुए-समान वर्णों के रूप तथा गोलाकार वर्णों के रूप। वे दोनों भेद ब्राह्मी लिपि के उत्तर भारतीय रूप तथा दक्षिण भारतीय रूप उत्पन्न करने के कारण बनें। उत्तर भारतीय रूप में वर्णों को सीधा रखा गया तथा दक्षिण भारतीय भेद में वर्णों में घसीट के साथ गोलाकार रूप आ गया। इस समय में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रिया स्पष्ट होती है जहां उत्तर भारत में खड़ी रेखा छोटी हो गई थी वहीं दक्षिण भारत में रेखा न केवल लंबी ही रही साथ ही उसमें बायीं और का घुमाव 'हुक' के रुप में बढ़ गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

7
अभिलेखों के प्रकार

अभिलेख अनेक रूपों में प्राप्त होते हैं। ये किसी राजा, राजा के मंत्री, उसके किसी अधिकारी, व्यापारी, व्यक्तिगत इत्यादि द्वारा अनेक रूपों में विभिन्न प्रसंगों में लिखवाये गए प्राप्त होते हैं। मुख्य रूप से इनका दो प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है-(1) राजकीय अधिकारिक लेख और (2) व्यक्तिगत लेख। धर्मशास्त्रों में भी अभिलेखों को दो भागो में विभक्त किया गया है- लोगों के लेख अर्थात् लौकिक एवं राजकीय लेख। राजकीय लेख राजाओं द्वारा स्वयं तथा उसके सामन्तों प्रान्तीय शासकों एवं उच्च मंत्रियों द्वारा लिखवाए जाने वाले लेख थे। लोगों द्वारा लिखवाये गए अलौकिक लेख व्यक्तिगत लेख माने जाते हैं। लौकिक लेख विषय-वस्तु तथा भाषा-शैली में राजकीय लेखों के समान ही होते थे।

राजकीय लेख मुख्य रूप से चार प्रकार के माने गए हैं- शासन, जय-पत्र, आज्ञा-पत्र तथा प्रज्ञापन पत्र। शासन का प्रयोग भूमिदान-पत्र के अर्थ में होता था। प्रदत्त दान को सम्बन्धित लोगों, अधिकारियों, भावी संतानों एवं राजाओं के संज्ञान के लिए दिए गए लेख शासन कहलाते हैं। इसमें राजा के वंश का वर्णन, राजा की प्रशस्ति, दान ग्रहण करने वाले का वर्णन, दान का परिमाप, भूमि की सीमाओं का वर्णन मुख्य रूप से होता है। इस प्रकार के लेख ताम्रपत्र पर लिखे जाते थे। राजा अपनी मुद्रा के साथ इसे जारी करते थे। जय-पत्र राजा जन-साधारण के लिए जारी करते थे। राजा व्यावहारिक कार्यवाही को देखकर इन पर अपना निर्णय प्रस्तुत करते थे। राजा के आदेश आज्ञा-पत्र के रूप में माने जाते थे। आज्ञा-पत्र के माध्यम से राजा अपने अधीन सामन्तों, भृत्यों इत्यादि को आज्ञा देते थे। प्रज्ञापन किसी भी प्रकार की सूचना अथवा घोषणा कहलाती थी। मानवीय तथा अभ्यर्थित लोगों को राजा प्रज्ञापन के माध्यम से कार्य का निवेदन करता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विभिन्न मतों के अनुसार अन्य प्रकार के लेख भी राजकीय लेखों में सम्मिलित किए जा सकते हैं। उन लेखों में प्रसाद लेख तथा जानपद लेख मुख्य हैं। राजा किसी व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसे कोई वस्तु उपहार-स्वरूप देता है। इससे सम्बन्धित लेख प्रसाद-लेख होते हैं। ये लेख किसी व्यक्ति की सेवा, शूरवीरता आदि से प्रसन्न राजा द्वारा दिए जाने के वर्णन से युक्त होते हैं। इन में दी गई भूमि आदि का उल्लेख होता है।

जानपद लेख किसी प्रसिद्ध स्थान के व्यक्ति द्वारा लिखवाये गए लेख होते हैं। वह प्रसिद्ध स्थान का व्यक्ति उस स्थान पर राजा के वर्णन को करते हुए लेख लिखवाता है। इसमें वह राजा का वंशक्रम, समय आदि तथा घटना-विशेष का वर्णन करते हुए लेख लिखवाता है।

विषय वस्तु के आधार पर अभिलेख अनेक प्रकार के होते हैं इनमें प्रमुख इस प्रकार हैं–

(1) प्रशस्ति लेख
(2) शासन सम्बन्धी लेख
(3) समर्पणात्मक लेख
(4) दान लेख
(5) व्यापारिक लेख
(6) धार्मिक एवं शिक्षात्मक लेख

प्रशस्ति-लेख–प्रशस्ति लेख मुख्य रूप से किसी राजा की प्रशंसा में लिखवाए गए लेख होते हैं। इस प्रकार के लेखों में राजा का जीवन, वंशावलि, उसके सैनिक अभियान, समकालीन राजाओं के साथ सम्बन्ध, प्रशासन-व्यवस्था, व्यक्तिगत विशेषताओं तथा उसकी उदारता का उल्लेख होता है। प्रशस्तियां मात्र प्रशंसा तथा मिश्रित प्रसंगों से युक्त होती हैं। राजा के कार्यों का वर्णन करने वाली प्रशंसा-मात्र से युक्त प्रशस्ति होती हैं। अशोक के लेख व्यक्तिगत-प्रशंसा के स्थान पर धर्म की प्रशंसा युक्त हैं। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख विशुद्ध प्रशस्ति हैं। इसमें राजा खारवेल के कार्यों का वर्णन उपलब्ध होता है। मिश्रित प्रशस्तियां यथा-अवसर समसामायिक राजाओं का वर्णन प्रस्तुत करती हैं। समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भलेख एक अन्य प्रसिद्ध प्रशस्ति है। इसमें समुद्रगुप्त की विभिन्न गतिविधियों का उल्लेख है। इसी प्रकार रुद्रदामन (प्रथम) का जूनागढ़ अभिलेख, मंदसौर से प्राप्त कुमारगुप्त (द्वितीय) एवं बंधु-वर्मन का प्रस्तर अभिलेख, स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ तथा भितरी से प्राप्त अभिलेख, यशोधर्मन का मंदसौर अभिलेख, पुलकेशिन् का ऐहोल अभिलेख कुछ प्रसिद्ध प्रशस्तियाँ हैं।

शासन लेख–राजा द्वारा आदेश एवं निर्देश रूप में जारी अभिलेख शासन-लेख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माने जाते हैं। अशोक द्वारा जारी लेख शासन लेख है। इसमें अशोक द्वारा धर्म एवं सदाचार से युक्त निर्देश दिए गए हैं। वह युक्तो, रज्जुकों, प्रादेशिकों, धर्म-महामात्रों के विभिन्न कार्यों के लिए नियुक्तियों का उल्लेख करता है। वह अपने को किसी भी स्थिति में होने पर प्रजा की बातें सुनने का विधान करता है। जहां पर जो नहीं है वहां पर उसी उपलब्धि का प्रयत्न करता है। दुर्भिक्ष इत्यादि आपत्ति के अवसरों पर धान्य आबंटन का निर्देश करता है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख बांध के जीर्णोद्धार का निर्देश शासन हैं। वह इसके लिए नकारात्मक सोच की चिंता नहीं करता, न ही इसके लिए वह कोई अतिरिक्त कर लेता है। अनेक दान-पत्रों में शासन-विषयक सामग्री मिलती है। हर्ष बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख में समुचित तौल, माप, भूमि आदि के संदर्भ में सामन्तों, पुलिस अधिकारियों, कुमारामात्यों, उपरिकों, विषयपति इत्यादि को शासन रुप में निर्देश देता है।

समर्पणात्मक लेख–प्राचीन अभिलेखों में समर्पणात्मक लेख बहुत संख्या में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के लेख ईश्वर अथवा किसी महापुरुष के प्रति समर्पणात्मक भावना से लिखे गए होते हैं। इनका मुख्य विषय मूर्तियों की स्थापना अथवा मंदिरों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार होता है। सिन्धु घाटी से प्राप्त कुछ मुद्राओं के समर्पणात्मक होने की सम्भावना व्यक्त की गई है। पिप्रह्वा बौद्ध कलश लेख गौतम बुद्ध को समर्पित है। बेसनगर का हेलियोडोरस गरुड स्तम्भ अभिलेख समर्पण की भावना से युक्त है। कुमारगुप्त (द्वितीय) एवं बुद्धवर्मन का मन्दसौर से प्राप्त अभिलेख समर्पणात्मक प्रकार का महत्वपूर्ण उदाहरण है। प्रशस्ति एवं प्रशासन के रूप में यह लेख भी राजा का वंशावली एवं राजकीय कार्यकलापों का वर्णन प्रस्तुत करता है। भीतरी से प्राप्त स्कन्दगुप्त का अभिलेख, ऐहोल से प्राप्त पुलकेशिन् (द्वितीय) के समय का अभिलेख समर्पणात्मक लेख हैं जिनमें लेखक राजा के कार्यकलापों एवं वंशावली का वर्णन करता है।

दान लेख–किसी धार्मिक-कार्य, धार्मिक-निर्माण इत्यादि के लिए पूर्ण अथवा आंशिक खर्च के लिए दिया गया पदार्थ दान कहलाता है। यह मुख्यत: भूमि के रूप में दिया जाता था। इसमें एक गांव भी दान हो सकता है। राजा द्वारा कर द्वारा प्राप्त होने वाली राशि दान-ग्रहण-कर्त्ता को दी जाती थी। इस राशि द्वारा मन्दिर के रख-रखाव पर मुख्य रूप से व्यय होती थी। यह दान अक्षय-नीवि के रूप में होता था। इसमें मूलधन (दान) स्थायी रहता था, उससे प्राप्त आय ही व्यय की जाती थी। मन्दिरों तथा विहारों के रखरखाव के लिए भी दान दिये जाते थे। विभिन्न पदार्थों के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दान का उल्लेख भी अभिलेखों में प्राप्त होता है। नासिक से प्राप्त उषवदात के अभिलेख में विभिन्न वस्तुओं इत्यादि के दान का उल्लेख है। हीरहडगल्ली से प्राप्त पल्लव राज शिवस्कन्दवर्मन का लेख गुप्त-कालीन ताम्र-पत्र अभिलेख, प्रभावती गुप्ता का पूना से प्राप्त ताम्र-पत्र अभिलेख, हर्ष का बांसखेड़ा से प्राप्त लेख, वाकाटक नरेशों, वलभी के शासकों, बादामी के चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, प्रतिहारों, गहडवालों, चेदि-नरेशों इत्यादि के असंख्य दान सम्बन्धी लेख प्राप्त होते हैं।

व्यापारिक लेख—व्यापार से सम्बन्धित कार्यों से युक्त लेख व्यापारिक लेख कहलाते हैं। व्यापारियों के निगम, श्रेणियाँ व्यापार कार्यों में स्वतन्त्र व्यवहार करते थे। वे अपनी मुद्राओं एवं सिक्कों के प्रयोग में स्वतन्त्र थे। सिंधु घाटी सभ्यता से सम्बन्धित मुद्राओं में से अनेक व्यापारिक मानी जाती हैं। इन पर लिखित छोटे-छोटे लेख व्यापारियों तथा अधिकृत लोगों की मुद्राएं रही होंगी। व्यापारिक दृष्टि से लिखित लेखों में कुमारगुप्त एवं बन्धुवर्मन कालीन मन्दसौर लेख एक महत्वपूर्ण रचना है। यह लेख लाट प्रदेश के रेशमी बुनकरों की श्रेणी को आमंत्रित करने के उद्देश्य से लिखा गया है। यह रेशमी बुनकरों द्वारा उनके अलंकृत रेशम के रूप के प्राचीन काल का विज्ञापन का अद्वितीय उदाहरण भी है।

धार्मिक तथा शिक्षात्मक लेख—धार्मिक-विषय-वस्तु के लेख धार्मिक लेख माने जाते हैं। ये सदाचार की शिक्षा देते हैं। अतः यह शिक्षात्मक लेख रूप में होते हैं। यह लेख उपदेश युक्त होते हैं। सिन्धु घाटी से प्राप्त कुछ मुद्राओं को पूजा हेतु धार्मिक सूत्रों से युक्त माना गया है। अशोक के लेखों में धर्माचरण का उल्लेख है। अशोक धर्माचरण के लिए विभिन्न व्यवस्थायें करता है तथा आचार-व्यवहार का कथन भी करता है। वह चाहता है कि उसके वंशज भी अंत काल तक इनका पालन करें। शुंगराजा भागभद्र कालीन बेसनगर गरुड स्तम्भ अभिलेख पूजा-परक एवं आचरणात्मक कार्य से युक्त हैं। वह संयम, त्याग तथा अप्रमाद को अमृत-पथ निर्दिष्ट करता है। कालान्तर में विशुद्ध धार्मिक एवं शिक्षात्मक लेख प्राप्त नहीं होते। अभिलेख के प्रारम्भ में मात्र धार्मिक-चिह्नों अथवा समर्पण के शब्द मात्र का ही उल्लेख करके धार्मिक आस्था प्रकट कर लेते हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न अन्य प्रकार के अभिलेख भी उपलब्ध होते हैं। तान्त्रिक विधि-विधान के वर्णन से युक्त तान्त्रिक अभिलेख होते हैं। आधुनिक भाषा में ये तावीज हो सकते हैं। इन पर केवल एक-दो वर्णों के सांकेतिक वर्ण अथवा कुछ चिह्न ही होते हैं। ये चिह्न अथवा वर्ण 'बीज' कहलाते हैं। कुछ सम्प्रदाय पशु-चिह्नों से युक्त तान्त्रिक लेख अपनाते हैं। ये बीज पशु-पक्षी, किसी न किसी देवता से सम्बन्धित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मान लिए जाते हैं। कभी-कभी प्रतीक चिह्नों का भी प्रयोग किया जाता है। विभिन्न प्रकार के अभिलेखों के प्रारम्भ से इस प्रकार के प्रतीकों का उत्कीर्णन प्राप्त होता है पर वे तान्त्रिक अभिलेखों के प्रकार में नहीं आते।

किसी घटना, किसी महात्मा अथवा किसी वीर की जीवन घटना-जन्म, मृत्यु अथवा किसी घटना विशेष का उल्लेख करने वाले संस्मरणात्मक लेख कहलाते हैं। ये साधारणतया संक्षिप्त होते हैं। बड़ली से प्राप्त लेख में भगवान् महावीर के 84 वें वर्ष का वर्णन है। रुम्मिनदेई अभिलेख में अशोक के राज्य के बीसवें वर्ष में भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान की यात्रा का उल्लेख है। बड़े कलेवर के लेखों में भी संस्मरणात्मक लेख उपलब्ध होते हैं। ये सभी लेख किसी न किसी रूप में किसी घटना का संस्मरणात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रशस्ति, पूजा, समर्पण, दान तथा धार्मिक लेखों में कहीं न कहीं कुछ न कुछ संस्मरण होता है।

सभी प्रकार के लेख साहित्यिक दृष्टि से भी समृद्ध होते हैं। यद्यपि प्रारम्भिक लेख साहित्यिक नियमों से निबद्ध नहीं होते। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख संस्कृत गद्य का उल्लेखनीय उदाहरण है। गुप्त-काल में समृद्ध संस्कृत की विभिन्न विधायों का प्रयोग मिलता है। इसके लेखकों का संस्कृत भाषा पर सुदृढ़ पकड़ उपलब्ध होती है। इनके लेखक अधिकाशंत वंश-परम्परा से आए राजकीय लेखक होते हैं। उदयगिरि से प्राप्त चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के अभिलेख का लेखक (कुल परम्परा से आया) वीरसेन समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के लेखक हरिषेन का पुत्र (हो सकता) है। इनको जितना भी स्थान अथवा क्षेत्र मिलता है उसमें वे अपने लाघव का प्रदर्शन करते हैं। कभी-कभी वे अपने को कालिदास, भारवि जैसे होने की कामना करते हैं, जैसे रविकीर्ति ऐहोल अभिलेख में अपनी इच्छा का प्रदर्शन करता है। मन्दसौर, जूनागढ़, नालन्दा इत्यादि स्थानों से प्राप्त अनेक अभिलेखों में छन्द, अलंकार, गद्य की रीतियों इत्यादि का अद्वितीय प्रयोग मिलता है। यह लेखन विधि की परम्परा लम्बे समय तक प्रचलित रही।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

8
लेखन का व्यवसाय

पढ़े लिखे लोगों में लेखन कार्य एक व्यवसाय के रूप में भी प्रचलित था अथवा नहीं यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। समाज के विकास से यह व्यवसाय का रूप ग्रहण कर सका। लेखक ब्राह्मण वर्ण के ही रहे हो यह स्पष्ट रूप से कहना सम्भव नहीं है। भास, कालिदास, भारवि, विशाखदत्त, दण्डी इत्यादि ब्राह्मण रहे हों यह आवश्यक नहीं है। यही स्थिति अभिलेखों के लेखकों की भी है। महावग्ग तथा जातक कथाओं में लेखन कला की शिक्षा देने वाली संस्थाओं के उल्लेख प्राप्त होता है। महावग्ग में गणना तथा रूप के साथ लेख विषय पाठ्यक्रम के अंग के रूप में वर्णित है। बौद्ध-साहित्य में लिखने को व्यवसाय का उत्तम साधन कहा गया है। विनय पिटक में लेखन को विशिष्ट कला कहा गया है। मुद्राराक्षस (अंक I) में व्यवसायिक लेखकों के वर्ग का उल्लेख है।

लेखक—लिखने वालों के लिए साधारण रूप से 'लेखक' शब्द का प्रयोग किया जाता था। लेखक के सन्दर्भ में लिख, लेख, लेखन इत्यादि शब्द प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होते हैं। रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों में इन शब्दों का वर्णन संकेत देता है कि उनके रचना-काल में लेखन एक व्यवसाय के रूप में प्रचलित रहा होगा। विनय-पिटक में भिक्षुणियों के लिए धार्मिक ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार करने हेतु लेखन को उपयोगी व्यवसाय के रूप में वर्णित किया गया है। महावग्ग तथा जातक कथाओं में राजकीय-पत्रों, हस्तलिखित पोथियों/पांडुलिपियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो व्यवसायिक लेखकों द्वारा ही रचित हैं। ब्यूलर ने लेखक को 'हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करने वाला' माना है। फ्लीट का मत है कि धातु अथवा प्रस्तर पर उत्कीर्ण करने के लिए विवरण तैयार करने वाला 'लेखक' है। ये लेखक मन्दिरों या पुस्तकालयों में कार्यरत् थे। जैन तथा बौद्ध भिक्षुणियां एवं व्रजाचार्य अपने ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार करते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिपिकर—लिपिकर एक प्रकार से लेखक का ही पर्याय है। अशोक के लेखों में इस शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इसी सन्दर्भ में लिबिकर एवं दीपिकर शब्दों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। सम्भव है कि लिपिकर लिखने एवं खोदने वाला दोनों कार्य करने वालों के लिए प्रयोग किया जाता होगा। कुछ प्रसंगों में यह लेखक के लिए प्रयुक्त शब्द है जबकि केवल खोदने वाले के लिए भी इस शब्द का प्रयोग की सम्भावना व्यक्त की गई है। संस्कृत-साहित्य एवं अभिलेखीय वर्णन में संकेत प्राप्त होता है कि लिपिकर मात्र लेखक नहीं थे। उनका वर्णन प्रतिलिपि कर तैयार करने वाले एवं उत्कीर्ण-कर्त्ता के रूप में भी सम्भावित है।

लेखकों एवं लिपिकरों के विषय में नियमों का भी प्रावधान था। वैयक्तिक पत्रों, आधिकारिक विवरणों, राजनैतिक एवं कूटनीतिक विवरण तैयार करने के व्यवहारिक नियम उपलब्ध थे। 'लेखक पंचाशिका' नामक पुस्तक में इनका विशद वर्णन विवरण उपलब्ध होता है। क्षेमेन्द्र व्यासदास की रचना 'लोकप्रकाश' के एक अंश में व्यापारिक एवं आर्थिक-विवरण से सम्बन्धित सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। वररुचि की पुस्तक 'पत्रमञ्जरी' भी इसी विषय पर आधारित कार्य है। इस प्रकार के उल्लेख लेखक एवं लिपिकर की व्यावसायिक स्थिति के द्योतक हैं। ये सभी पढ़े लिखे नहीं थे। पढ़े-लिखे विद्वान् एवं शिक्षित लेखक भाषा के प्रवाह पर प्रभाव डाल सकते थे लेकिन कम शिक्षित अथवा अशिक्षित लेखक अथवा लिपिकरों ने लेखक की शैली को प्रभावित किया। अतः वे लिपि में परिवर्तन के एक कारण बने।

दिविर—दिविर लेखन-कार्य में संलग्न व्यक्ति के लिए प्राप्त अन्य शब्द है। इस शब्द का प्रयोग एवं प्रचार अधिकांशतः भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में रहा है। यह शब्द अशोक के लेखों में प्राप्त 'दीपिकर' शब्द का प्राकृत रूप हो सकता है। ब्यूलर का मत है कि 'दिविर' अथवा 'दिवीर' शब्द फारसी 'देबीर' है। 'देबीर' का अर्थ 'लेखक' है। सासानियों के शासन-काल में भारत एवं फारस के मध्य आवागमन एवं व्यापार की वृद्धि के कारण इस शब्द का ग्रहण किया गया था। ब्यूलर का यह मत मात्र संभावना है। यह शब्द सर्वप्रथम छठी शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में मध्य भारत में प्राप्त होता है। वलभी अभिलेखों में 'सान्धिविग्रहिक (सन्धि एवं युद्ध का मन्त्री) को 'दिविर पति' के रूप में बताया गया है। "लिखितं सान्धिविग्रहाधिकरणकृत दिविर पति.......' जैसे प्रयोगों से प्रतीत होता है कि 'दिविर' नामक कर्मचारी सान्धि-विग्रहिक के अधीन लेखन कार्य करने वाले थे। क्षेमेन्द्र के 'लोक-प्रकाश'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नामक ग्रन्थ में बाजार के लिपिकर के लिए 'गंज -दिविर' एवं नगर के लिपिककर के लिए 'नगर-दिविर' का उल्लेख प्राप्त होता है। इस शब्द का प्रयोग लगभग बारहवीं शताब्दी तक होता रहा।

कायस्थ—कायस्थ शब्द का अर्थ 'राज्य रूपी काया में स्थित व्यक्ति' है। कायस्थ वह व्यक्ति होता है जिसमें समस्त आदर्श तथा उद्देश्य उसकी अपनी काया में ही स्थित रहते हैं। वह अपनों से बाहर औरों की चिंता नहीं करता। कायस्थ व्यवसायिक लेखकों का एक निश्चित वर्ग जाना जाता है। कायस्थ वस्तुतः विभिन्न वर्णों एवं जातियों से सम्बन्धित ऐसे व्यक्ति थे जो राजा एवं मन्त्रियों से सम्बन्धित नौकरी करना पसन्द करते थे। अतः प्रारम्भ से ये कोई जाति या वर्ग के रूप में नहीं थे। कालान्तर में ये एक समुदाय के रूप में विकसित हुए। एवमेव वे समुदाय से एक जाति के रूप में विकसित हो गए। राजकीय कार्यों से संग्लन होने के कारण उनका स्वभाव कठोर होना भी सम्भव है। विष्णुधर्मसूत्र एवं याज्ञवल्क्यस्मृति में राजा द्वारा चाट, दुराचारी, डाकुओं, कायस्थों से प्रजा की रक्षा करने के लिए निर्देश दिया गया है। गुजरात और कलिंग से प्राप्त अभिलेखों में कल्हण की 'राजतरंगिणी' तथा क्षेमेन्द्र के 'लोकप्रकाश' में कायस्थों का प्रायः उल्लेख हुआ है।

लेखकों के अन्य भी अनेक नाम मिलते हैं, यथा करण, कर्णिक, करणिन्, शासनिन्, धर्म-लेखनिन् इत्यादि। किसी अधिकरण से सम्बन्धित होने के कारण लेखक 'करण' कहे जाते थे। ये कायस्थों के समान ही व्यवहारित होते थे। उनके समान ही 'करण' की स्थिति थी। 'कर्णिक' लेखकों का अधिकारी, 'करणिन्' किसी अधिकरण का लिपिकर, 'शासनिन्' राजा अथवा किसी अधिकारी के आदेश लिखने वाले तथा 'धर्म-लेखिन्' व्यवहारिक विवरणों को लिखने वाले व्यक्ति थे। लेख लिखने वालों के साथ-साथ उत्कीर्ण करने वालों का परिचय भी प्राप्त होता है। ये वर्णों को खोदने वाले शिल्पिन्, रूपकार, शिलाकूट इत्यादि नामों से उल्लिखित हैं। व्यावसायिक लेखक प्रशस्ति इत्यादि लिखते थे। ये लेखक प्रशस्ति इत्यादि को शिला, धातु इत्यादि पर खोदने के लिए शिल्पी को दे देते थे। शिल्पी किसी विद्वान् के मार्गदर्शन में वर्णों को खोद देते थे। कतिपय अभिलेखों से संकेत प्राप्त होता है कि लेखक भी स्वयं शिल्पी का कार्य कर लेते थे। 'अयस्कर' लोहे पर उत्कीर्ण करने वाले थे। कांस्यकर अथवा ताम्रकर कांस्य अथवा ताम्र पर वर्ण उत्कीर्ण करने वाले, हेमकर स्वर्ण-रजत आदि पर वर्णों के लेखन का कार्य किया करते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

9

लेखन-सामग्री

ताड़पत्र–ताड़ नामक वृक्ष से प्राप्त पत्र ताड़पत्र कहलाते हैं। ताड़ के वृक्ष दक्षिण भारत में एवं तटीय क्षेत्रों में उपलब्ध होते हैं। ताड़ के पत्र बहुत बड़े-बड़े होते हैं। अतः लम्बाई में ये अत्यधिक लम्बे होते हैं पर चौड़ाई लगभग चार इंच तक की होती है। लेखन के लिए तैयार करने के लिए पहले उन्हें सुखा लेते थे, तत्पश्चात् उन्हें पानी में भीगो लेते थे अथवा उबाल लेते थे। पुनः उन्हें सुखा कर चिकने पत्थर, शंख आदि से घिस लेते थे। भारत के लगभग समस्त क्षेत्रों में ये पत्र लेखन का मुख आधार थे। उत्तर तथा पश्चिमी भारत में स्याही से इन पर लिखते थे तथा दक्षिण-भारत में शलाका से वर्ण खोद देते थे । खोदे गए वर्णों पर स्याही लगा दी जाती थी। लिखित पत्रों को परस्पर संलग्न करने के लिए एक अथवा दो छिद्रों का उपयोग करते थे। उनके ऊपर एवं नीचे लकड़ी के फलक लगा देते थे। इन फलकों में भी एक अथवा दो छिद्र होते थे, जिनसे उन्हें बांध दिया जाता था। शलाका से लिखित दक्षिण भारत में पत्र वातावरण के प्रभाव से शीघ्र नष्ट जाते हो जाते हैं। अतः वे अधिक प्राचीन काल के सम्बन्धित प्राप्त नहीं होते। उत्तर एवं पश्चित भारतीय लेखन शैली के अनेक पत्र प्राप्त होते हैं। सबसे पुराना एक नाटक का खण्डित अंश हैं। ये द्वितीय शताब्दी ई० के लगभग से सम्बन्धित हैं। मध्य भारत से जापान पहुँचे छठी शताब्दी ई० के 'प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र' तथा 'उष्णीषविजयधारणी' पुस्तकों के पत्र होर्युजी मठ में संरक्षित हैं। नेपाल में ताड़पत्र के पुस्तक-संग्रह में सातवीं शताब्दी ई० का स्कन्दपुराण, कैम्ब्रिज के संग्रह में हर्ष संवत् 252 (859 ई०) का 'परमेश्वर-तंत्र', नेपाल में नेवार संवत् 28 (906-07 ई०) का 'लंकावतार' मुख्य पाण्डुलिपियों में सम्मिलित हैं।

भूर्जपत्र–भूर्ज वृक्ष से प्राप्त पत्र भूर्जपत्र कहलाते हैं। भूर्ज वृक्ष हिमालय के क्षेत्र में उपलब्ध होते है। ये पत्र भूर्जवृक्ष की भीतरी छाल होती है। भूर्जपत्र साधारणतया एक मीटर लम्बे तथा हथेली भर चौड़े होते हैं। पर वे अधिक लम्बे-चौड़े भी प्राप्त हो जाते हैं। तेल से घिस कर उन्हें चिकना करके लेखन योग्य बनाया जाता है। उन पर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्याही से लिखा जाता था। ताड़-पत्रों के समान भूर्ज-पत्रों में भी छिद्र किया जाता था, तत्पश्चात् उन्हें काष्ठ-फलकों से बांध देते थे। अल्बेरुनी ने इसे तूज अथवा भूर्ज-पत्र का लेखन के आधार के रूप में प्रयोग किए जाने का उल्लेख किया है। इसे उत्तर एवं मध्य भारत में प्रयोग किया जाता था। इस पर लिखित पुस्तकें मुख्य रूप से काश्मीर में से प्राप्त होती हैं। इस पर लिखित प्राचीनतम पुस्तक 'धम्मपद' है। यह खरोष्ठी लिपि में लिखी गई है। यह खोतान से मिली है। इसका समय लगभग द्वितीय अथवा तृतीय शताब्दी ई० माना गया है। एक अन्य पुस्तक 'संयुक्तागमसूत्र' है। यह चतुर्थ शताब्दी ई० से सम्बन्धित है। बेवर की एक पाण्डुलिपि है जिसका समय छठी शताब्दी ई० है। एक अन्य बख्शावली की अंकगणित की पुस्तक है। इसका समय आठवीं शताव्दी ई० का माना जाता है।

कागज—ऐसी मान्यता है कि चीन में कागज बनाया जाना (लगभग 105 ई० में) प्रारम्भ हुआ। परन्तु सिकन्दर के साथ आए निओर्कस (327 ई० पू०) ने भारतीयों के रूई कूटकर लुगदी बनाकर लेखन के लिए कागज तैयार करने का उल्लेख किया है। ताड़पत्र तथा भूर्जपत्र की सहज उपलब्धि के कारण कागज का प्रयोग सीमित होता रहा होगा। जलवायु के कारण कागज की आयु बहुत कम थी। अत: इनका लेखन के लिए अधिक प्रयोग नहीं होता होगा। कागज पर लिखने के लिए गेहूँ अथवा चावल के आटे का उस लेप करते थे। तत्पश्चात् शंख आदि से घिस कर मुलायम करके उन पर लिखा जाता था। कुगिअर (मध्य एशिया) से वेबर को गुप्त-कालीन लिपि में लिखित पत्र, काशगर से प्राप्त लगभग इतने ही पुरानी पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। जैन पाण्डुलिपियों के पत्रों पर चित्रकारी उपलब्ध होती है। भारत में कागज पर लिखित सबसे प्राचीन पुस्तक तेरहवीं शताब्दी से सम्बन्धित मानी जाती है। कागज की पत्रों में भी आवश्यकता न होते हुए भी ताड़पत्र एवं भूर्जपत्र का अनुकरण करके छिद्रों के लिए स्थान छोड़ा गया है।

पत्थर—लेख को स्थायी बनाने के लिए पत्थर का प्रयोग किया जाता था। अशोक अपने लेखों को 'चिरथिटिका'-चिर काल तक स्थायी रखने के लिए शिला पर उत्कीर्ण करने का उल्लेख करता है। पत्थर पर उत्कीर्ण लेख चट्टान, स्तम्भ, शिला, प्रतिमाभों की पादपीठ, पत्थर के पात्र इत्यादि पर उपलब्ध होते हैं। सर्वप्रथम शिला तल को लेखन के लिए समतल किया जाता था। शिला पर निर्धारित क्षेत्र में लेखक स्याही से कलम के साथ अथवा रंग एवं तूलिका से वर्णों को लिख देता था। तत्पश्चात् छैनी एवं हथौड़ी से उन वर्ण-चिह्नों के खोद दिया जाता था। निर्धारित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थान के चारों ओर रेखाएं खीच दी जाती थी। शिलाओं एवं स्तम्भों पर लेखन के लिए समान पद्धति अपनायी जाती थी। प्रतिमाओं की पादपीठ पर, कुएं के प्रस्तर, मन्दिर की भित्तियों इत्यादि के लिए शिलाओं को तैयार करके लिख लिया जाता था। उसके पश्चात् निर्धारित स्थानों पर स्थापित कर दिया जाता था। अशोक के धर्म-लेख इस श्रेणी के दीर्घ लेख हैं। इसी प्रकार प्रशस्तियाँ भी इन पर लिखी गयीं। प्रतिमाओं की पाद-पीठ, पत्थर, क्रिस्टल आदि पर भी लेखन के लिए इसी पद्धति को अपनाया जाता था। लेख के छोटे अथवा बड़े होने का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं होता था। प्रस्तर शिलाओं पर नाटक उत्कीर्ण किए जाने के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। चौहान नरेश विग्रहराज वीसलदेव द्वारा रचित 'हरकेलिनाटक' तथा सोमेश्वर पंडित द्वारा रचित 'ललितविग्रहराजनाटक' बड़ी शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। विस्तृत लेख अनेक फलकों पर उत्कीर्ण प्राप्त होते हैं। ये किसी प्रशस्ति का पुस्तक रूप था। कुम्भलगढ़ के कुम्भस्वामी अथवा मामदेव मंदिर में राणाकुम्भा का अभिलेख पाँच शिला-फलकों पर उत्कीर्ण है। आन्ध्र-कवि रणछोड़ द्वारा 24 सर्गों में लिखित 'राजप्रशस्ति' लगभग 24 शिलाफलकों पर लिखित है। दिगम्बर जैन-कृति 'उन्नत-शिखर-पुराण' को 1170 ई० में शिला पर उत्कीर्ण किया गया। धर्म-लाभ के लिए तथा तीर्थ-यात्रा अथवा अपने प्रयाण से सम्बन्धित शिलाएं तथा स्तम्भ उपलब्ध होते हैं। इन पर यात्री के नाम मात्र का उल्लेख मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि नामित व्यक्ति उस क्षेत्र में यात्रा पर गया था।

स्तम्भ–प्रस्तर से निर्मित अथवा अन्य सामग्री से निर्मित स्तम्भों पर अभिलेख उत्कीर्ण किए जाने की परम्परा प्राप्त होती है। सबसे पुराने स्तम्भ अशोक द्वारा लिखवाए गए उपलब्ध होते हैं। कुछ स्तम्भ विजय-स्तम्भ, ध्वज का स्तम्भ अथवा पताका दण्ड प्रायः मंदिरों में स्थापित किये जाते हैं। विजय-स्तम्भ प्रायः किसी शासक की विजय की घटना का उल्लेख करते हैं। प्रयाग में स्थित समुद्रगुप्त के लेख से युक्त स्तम्भ, दिल्ली में मेहरौली का लौह-स्तम्भ अभिलेख विजय-प्रशस्ति हैं। मेहरौली लौह-स्तम्भ लेख का नरेश चन्द्र के नाम से उल्लिखित है। यह नरेश चन्द्र गुप्त (द्वितीय) का माना जाता है। इस स्तम्भ का लोहा विशेष पद्धति से निर्मित है। अनेक शताब्दियों से खुले में स्थापित होते हुए भी इस पर जंग का प्रभाव नहीं पड़ा। यह स्तम्भ निर्माण की उस समय प्रचलित लौह की विशिष्ट पद्धति के ज्ञान का संकेत करती है। यश-प्राप्ति इत्यादि के लिए कीर्ति-स्तम्भ अथवा यश-स्तम्भ स्थापित किये जाते थे। यज्ञ से सम्बन्धित 'यूप' स्तम्भ की स्थापना का उल्लेख प्राप्त होता है। भरहुत, सांची तथा नागार्जुनीकोंडा से (बौद्ध) धार्मिक स्तम्भ मिलते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ताम्र पत्र—प्राचीन भारत के प्राचीन काल से ही ताम्र (ताम्बा) लेखन का अत्यधिक लोकप्रिय माध्यम रहा है। अधिकांश राजाज्ञाएं ताम्र-पत्रों पर उत्कीर्ण प्राप्त होती हैं। ये राज-आज्ञाएं मुख्य रूप से अनुदान तथा दान से सम्बन्धित हैं। दान का विवरण विस्तार-पूर्वक लिख कर दान-प्राप्त कर्त्ता को दी जाती थीं। इनमें दान के प्राप्त-कर्त्ता के स्वामित्व का अधिकार, सरकारी तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा उसमें अनधिकार प्रवेश पर रोक, दान-दाता के वंशजों तथा उत्तराधिकारियों द्वारा दान को खण्डित न करने, दान का विस्तार-पूर्वक इत्यादि विषयों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये अभिलेख दान अथवा अनुदान के स्वामित्व अथवा समर्पण को सूचित करते हैं। उत्तर-भारत के दान-दाताओं ने ताम्र-पट्ट के दोनों ओर ही लेख उत्कीर्ण करवाए जबकि दक्षिण भारत में ताम्र-पत्र के एक ओर ही लेख लिखे गए प्राप्त होते है। दान तथा अनुदान से सम्बन्धित ताम्र-पत्र एकाधिक पत्रों पर उत्कीर्ण होते थे जो अनेक की संख्या में होते थे। ताम्र-पत्र आयताकार रूप में होते है। अनेक पत्र होने की स्थिति में उन्हें वलय (छल्ले) में संलग्न कर दिया जाता था। इस वलय पर कांस्य की मोहर लगा कर सील किया जाता था। जिस प्रकार की लेखन-प्रकिया जिस क्षेत्र में प्रचलित होती थी ताम्र-पत्रों पर भी वही प्रकिया अपनायी गई। उत्तर भारत में लेखक द्वारा लिख जाने के पश्चात् वर्णों को उत्कीर्ण किया जाता था। दक्षिण भारत में कुरेदने के द्वारा उत्कीर्ण किया गया। ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। जिनमें वर्णों को रेखाओं के द्वारा चिह्नित करने के स्थान पर बिन्दुओं द्वारा उत्कीर्ण किया गया है।

लेखन सामग्री के रूप में वस्त्र, चर्म, काष्ठ, मिट्टी से निर्मित ईंट, बर्तन, शंख, सोना, चाँदी, कांस्य, लोहा, पीतल इत्यादि का भी उपयोग किया गया है। वस्त्र, चर्म जैसे पदार्थों को प्रस्तर इत्यादि के समान तैयार किया जाता था। इन पर चावल अथवा आटे का लेप करके उसे सुखाकर शंख अथवा कौड़ी से घिस कर मुलायम बना लिया जाता था तत्पश्चात् उन पर लेखन कार्य होता था। याज्ञवल्क्य (1/395) में राजाज्ञाओं को वस्त्र पर लिखने का उल्लेख किया है। इसको कार्पासिक पट कहा गया है। मैसूर क्षेत्र के व्यापारियों द्वारा बही खाते के लिए पटों को इमली के बीज के बुरादे से लेप कर सुखा देते थे, उसके बाद कोयले से काला कर के चाक या सलेटी से उस पर लिखने का कार्य करने के उदाहरण प्राप्त होते थे। इस प्रकार के बही खाते 'कडितम्' अथवा 'कडतम्' कहलाते थे। रेशमी वस्त्रों के लेखन में उपयोग के उदाहरण प्राप्त होते हैं। भारत में चर्म 'अजिन्' का उपयोग लेखन के लिए बहुत कम हुआ है। जातक कथाओं में काष्ठ-फलक का लेखन के लिए प्रयोग होने के उदाहरण मिलते हैं। काष्ठ के फलक के अतिरिक्त काष्ठ-स्तम्भों का भी प्रयोग होता था। मिट्टी से निर्मित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ईंट पर लिखित लेख उपलब्ध होते है। इन पर राजकीय लेख भी मिलते हैं। धार्मिक–लेखों से युक्त मिट्टी की मुहरें भी अत्यधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। धनी लोग सोने तथा चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं पर लेख उत्कीर्ण कराते थे। इन धातुओं का उपयोग अधिकांशतः धार्मिक विधानों एवं श्रद्धा–वश किया जाता था।

सभी प्रकार के लेखन के लिए आधार को समतल करके उत्कीर्ण किया जाता था। उत्कीर्ण करने से पहले उन पर वर्ण लेख लिखे जाते थे। लेखन के लिए वर्णक तूलिका एवं रंग, कलम एवं स्याही–मसि का प्रयोग किया जाता था। स्याही को मसि तथा 'मेला' के नाम से जाना जाता है। मसि बारीक पिसे कोयले को पानी, गोंद, चीनी इत्यादि के मिश्रण से बनाया जाता था। यह मसि अस्थायी होती थी। लाख के द्रव्य को पानी, सोहागा, लोघ्र तथा तिल के तेल के काजल के साथ मिश्रण करके उबाल कर घोल से बनाते थे। इससे यह मसि पक्की न मिटने वाली बन जाती थी। लाल स्याही अलक्तक या हिंगुल से गोंद के साथ मिश्रित करके बनायी जाती थी। टेसू के फूलों की सहायता से पीले रंग की स्याही तैयार की जाती थी। ठोस धरातल वाले आधार पर शलाका (stylus) से वर्ण कुरेद कर लिखे जाते थे। वर्ण जिन कोमल माध्यमों पर कुरेदे गए उन पर लेखक द्वारा पहले रंग इत्यादि से लिखना आवश्यक नहीं था। उन्हें सीधे ही कुरेद दिया जाता था। छेनी–हथौड़ी से उत्कीर्ण वर्ण सीधे रहे जैसे उत्तर भारतीय शैली के वर्ण जबकि शलाका के प्रयोग से वर्णों में गोलाई उत्पन्न हो गयी। जैसे दक्षिण भारतीय शैली के वर्णों का रूप।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

10
लेखों का संरक्षण एवं पुस्तकालय

प्राचीन काल से वर्तमान समय तक लेखन-कार्य निरन्तर चल रहा है। शिलाओं, धातुओं जैसे पदार्थों पर लिखित सामग्री दीर्घ काल तक स्थाती रह सकती है। वह स्थायी रही भी है। अशोक ने अपने लेखों को शिलाओं तथा स्तम्भों जैसे कठोर माध्यमों पर लेखन का औचित्य प्रदर्शित करते हुए ही 'चिलं थितिका च होतू ती ति' कहा है। लेकिन लेखन कार्य सदा ठोस पदार्थों पर ही समीति नहीं रहा। भूर्ज-पत्र, ताड़-पत्र, कागज इत्यादि जैसे पदार्थ भी लेखन के लिए प्रयुक्त होते रहे। शिला, प्रस्तर इत्यादि पर लिखित सामग्री संरक्षित रखने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं करने पड़ते। परन्तु पत्र, कागज इत्यादि जैसे पदार्थों की आयु अधिक नहीं होती। भारत का मौसम इस प्रकार का है कि ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जो प्राचीन लिखित सामग्री पाण्डुलिपियों के रूप में प्राप्त होती हैं वे उन क्षेत्रों में उपलब्ध हुई हैं जहाँ मौसम पूर्णतया ठंडा रहता है, यथा अफगानिस्तान में खोतान, जापान इत्यादि। मनुष्य मौसम के प्रभाव, कीट, दीमक, फुंगी इत्यादि के प्रभाव को नष्ट नहीं कर सकता, परन्तु वह प्रयत्न-पूर्वक इसे दूर अवश्य कर सकता है। विषय-वस्तु के रक्षण-हेतु लेखों का पुनः-पुनः लिखकर संरक्षित करने का प्रयास होता था। गुरुकुलों में विद्यार्थी अपने अध्ययन से बचे खाली समय पाण्डुलिपियों की नकल तैयार करते थे। कुछ अन्तराल के पश्चात् इन नकलों की पुनः नकल तैयार की जाती थी। साथ ही व्यावसायिक लेखक भी नकल तथा पुनः नकल अवश्य तैयार करते-करवाते रहे होंगे। भारत के वातावरण में बहुत अधिक प्रत्यन-पूर्वक संरक्षित पाण्डुलिपियां लगभग 500 वर्षों से अधिक पुरानी प्राप्त नहीं होती। वे अधिकांशतः मूल पाण्डुलिपि न होकर पुनः लेखन द्वारा तैयार की गई प्रतिलिपि ही अधिकांशतः मिलती हैं।

पाण्डुलिपियों के रूप में लिखित पत्रों का संग्रह मुख्य रूप से मन्दिरों, पाठशालाओं तथा गुरुकुलों तक मुख्यतः सीमित था। संग्रह के लिए विभिन्न संस्थाओं एवं पुस्तकालयों का भी प्रयोग होता था। प्राचीन काल में नालन्दा, तक्षशिला जैसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों में पाण्डुलिपियों के संग्रह का उल्लेख प्राप्त होता है। उपलब्ध विवरण के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय में रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नगञ्जक नामक तीन पुस्तकालय थे। ये तीनों अत्यधिक विशाल थे। इनमें रत्नोदधि नौ मंजिल का भवन था। इसमें पवित्र ग्रन्थों (धार्मिक ग्रन्थों) का संग्रह था। ह्वेन्सांग नामक चीनी यात्री ने जेतवन विहार में पुस्तकालयों एवं वाचनालयों का वर्णन किया है। इनमें वैदिक, बौद्ध तथा धार्मिक एवं अन्य प्रकार के साहित्य के विशाल संग्रह का उल्लेख है। उसने काश्मीर के प्रासाद में स्थित पुस्तकालय से एकत्रित करके बीस लेखकों से पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियां तैयार करवाई थी। अन्य प्राचीन साक्ष्यों के अनुसार माना जाता है कि राजाओं, सामन्तों तथा धनाढ्यों के अपने पुस्तकालय होते थे। वलभी के मैत्रक नरेश गुहसेन (559 ई०) द्वारा एक विश्वविद्यालय को पुस्तकों के संग्रह एवं संरक्षण के लिए अनुदान दिया जाता था। गुजरात में कुमारपाल ने इक्कीस भण्डारों अर्थात् पुस्तकालयों की स्थापना की थी। कुमारपाल के मन्त्री वस्तुपाल ने अनहिलवाड, स्तम्भतीर्थ (कैम्बे) एवं भृगुकच्छ (भड़ौच) में अनेक पुस्तकालयों की स्थापना की थी। इस हेतु उसके द्वारा अट्ठारह करोड़ रुपये की विशाल धन-राशि व्यय करने का उल्लेख प्राप्त होता है। देवपाल देव के नालन्दा दान-पत्र में विभिन्न विषयों की पुस्तकें लिखने तथा विहारों के रख-रखाव के लिए दान देने का उल्लेख है। इन विहारों में पुस्तकें संग्रहित रहती होंगी। पांगन (म्यांमार-बर्मा) से उपलब्ध 1442 ईस्वी की तिथि से अंकित अभिलेख के अनुसार एक राज्यपाल तथा उसकी पत्नी ने बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित 295 पुस्तकें दान में दी थी। स्पेन से 1641 ई० में भारत आए एक पादरी ने लिखा है कि अकबर का एक शाही पुस्तकालय-किताब खाना था। इसमें चौबीस हजार पुस्तकों का संग्रह था।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पश्चात् यूरोपीय विद्वान् भारतीय सभ्यता के अध्ययन की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने लिखित-साहित्य में रुचि ली। मूर्तियों, अभिलेखों इत्यादि के साथ-साथ विभिन्न रचनाओं का संग्रह व्यक्तिगत रूप से किया। इन विद्वानों ने अपने अध्ययन को परस्पर साझा भी किया। विलियम जोन्स, सर राबर्ट चैम्बर्स इत्यादि के पास अभिलेखों एवं पाण्डुलिपियों के व्यक्तिगत संग्रह भी थे। सर राबर्ट चैम्बर्स के व्यक्तिगत संग्रह बर्लिन स्थित इम्पीरियल लायब्रेरी में सम्मिलित कर लिये गए। विलियम जोन्स तथा उनकी पत्नी ने अपने संग्रह 1807 में एशियाटिक सोसायटी को भेंट कर दिए। विलियम जोन्स दक्षिण भारत में सर्वे के कार्यलय में 1796 से 1806 तक कार्यरत् थे। इस अवधि में उन्होंने असंख्य महत्त्वपूर्ण सामग्रियों का संकलन किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यह संग्रह दस हजार पौण्ड में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खरीदकर लंदन स्थित इण्डिया हाऊस लायब्रेरी में संरक्षित रख दिया। कांउसिल ऑफ गवर्नर जनरल के सचिव व्हिटनी स्टोक को तत्कालीन वाइसराय सर जॉन लारेंस ने सारे भारत से प्राप्त संस्कृत, अरबी तथा फारसी में लिखित पुस्तकों को सूची-बद्ध करने का निर्देश दिया। व्हिटनी स्टोक के सुझाव पर सरकार ने पाण्डुलिपियों की खोज, उपलब्ध पाण्डुलिपियों की सूची बनाने तथा महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियों को खरीदने का निर्देश जारी किया। मैकन्जी ने अपनी कुछ पाण्डुलिपियों का संग्रह मद्रास स्थित गवर्नमैण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी में संरक्षित करा दिया। ब्यूलर ने भारत में अपने कार्यकाल में 1888 में, तथा ऑफ्रेच ने जर्मनी तथा इंग्लैड में अपना कार्य करते हुए 1904 में अपने पाण्डुलिपियों के संग्रह को लंदन स्थित इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी में जमा कर दिया। इसी प्रकार यूरोप में अनेक स्थानों पर लिखित सामग्री के संरक्षण के लिए पुस्तकालयों का प्रयोग किया गया।

भारत में भी अनेक स्थानों पर पाण्डुलिपियों का संग्रह किया गया। बनारस स्थित राजकीय संस्कृत कॉलेज (वर्तमान में सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय) में पाण्डुलिपियों का भारत का प्राचीनतम उपलब्ध पुस्तकालय है। इसकी स्थापना 1791 में की गई थी। तंजौर के महाराजा सर्फोजी (1798-1832) ने आधुनिक पद्धति पर आधारित संग्रहालय की स्थापना की थी। मद्रास सरकार ने 1918 में इसे पुस्तकालय के रूप में मान्यता प्रदान की। जम्मू में 1857 में रणवीर संस्कृत रेजिडेन्शीय इन्स्टीच्यूट तथा मद्रास में 1870 में पाण्डुलिपियों के संरक्षण के क्षेत्र में गवर्नमैण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी की स्थापना हुई। मद्रास में ही पाण्डुलिपियों के संरक्षण एवं पुस्तकालय के रूप में 1886 में अड्यार लायब्रेरी एवं रिसर्च सैंटर की स्थापना की गई। मैसूर के महाराजा चामराज ओडेयार ने 1891 में मैसूर में गवर्नमैण्ट ओरियण्टल लायब्रेरी स्थापित की। बाद में मैसूर विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर इसका प्रबन्धन विश्वविद्यालय के अधीन कर दिया गया। इस पुस्तकालय को 1943 में ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिच्यूट के रूप में परिवर्तित कर दिया गया । बड़ौदा में 1893 में सैण्ट्रल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपि-विभाग स्थापित हुआ। इसे 1927 में सायाजीराव गायकवाड़ ओरिएण्टल इन्स्टिच्यूट के रूप में विकसित किया गया। बम्बई सरकार द्वारा भी पाण्डुलिपियां संग्रहित की गई। इनको 1917 में भण्डारकर ओरिएण्टल इन्स्ट्च्यूट द्वारा प्रकाशित किया गया। तिरूवनन्तपुरम में महाराज स्वाति तिरुनलवर्मा ने महाराज पैलेस लायब्रेरी में तथा इस लायब्ररी के प्रबन्धक ने पाण्डुलिपियों का एक अन्य पुस्कालय स्थापित किया। इन दोनों का केरल विश्वविद्यालय ने 1937 में ओरिएण्टल मैनुस्किप्ट लायब्रेरी के रूप में विलय कर दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपर्युक्त कुछ प्रयत्नों द्वारा लिखित सामग्री के संग्रह का प्रयास किया गया। लिखित कार्य पाण्डुलिपियों के रूप में था। अतः यह एक पाण्डुलिपि मिशन के रूप में परिवर्तित हो गया। पाण्डुलिपियों के संग्रह की दिशा में अनेक विश्वविद्यालयों, संस्थाओं, मठों, विहारों, जैन-भण्डारों ने अपना अद्वितीय योगदान दिया है। विदेशों में भी अनेक स्थानों पर विभिन्न संग्रहालयों का उपयोग हुआ। वर्तमान में दिल्ली में इन्दिरा गान्धी नैशनल सैण्टर ऑफ आर्ट्स भी इस क्षेत्र में संलग्न है।

कतिपय विभिन्न प्रसिद्ध विदेशी संग्रहालय एवं पुस्तकालयः

1. दरबार लायब्रेरी	काठमण्डु (नेपाल)
2. म्यूजियम लायब्रेरी	कोलम्बो (श्रीलंका)
3. पंजाब यूनिवर्सिटी लायब्रेरी	लाहौर (पाकिस्तान)
4. एज़िएतासिज़ म्यूज़ेज इम्पेरात	अकदिमी नाउक पेट्रोग्राड (रूस)
5. रॉयल लायब्रेरी	कोपेनहेगेन (डेनमार्क)
6. बिबलियोथेक्य नेशनाले	पेरिस (फ्रांस)
7. ब्रिटिश लायब्रेरी	लन्दन (ब्रिटेन)
8. रॉयल एशियाटिक सोसायटी	लन्दन (ब्रिटेन)
9. बोदलायन लायब्रेरी	ऑक्सफोर्ड (ब्रिटेन)
10. इण्डिया इन्स्टिट्यूट	ऑक्सफोर्ड (ब्रिटेन)
11. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी लायब्रेरी	ऑक्सफोर्ड (ब्रिटेन)
12. विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूजियम	लन्दन (ब्रिटेन)
13. प्रेउस्सिशे स्ट्टेस बिबलियोथेक	बर्लिन (जर्मनी)
14. यूनिवर्सिटिट्स बिबलियोथेक	मारबर्ग (जर्मनी)
15. बेयेरिशे स्याट्स बिबलियोथेक	म्यूशेन (जर्मनी)
16. यूनिवर्सिटिट्स बिबलियोथेक	ट्यूबिंगेन (जर्मनी)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

11
काल-निर्धारण की पद्धति एवं मुख्य संवत्

पुरातत्त्व मानव के अतीत का अध्ययन करने का माध्यम है। यह अतीत का ज्ञान तभी सार्थक है जब उसका समय निर्धारित हो सके। अवशेष की तिथि ज्ञात होने पर ही उसका महत्त्व एवं स्थान महत्त्वपूर्ण हो जाता है। तिथि-निर्धारण के प्राप्त साक्ष्य की मात्रा अधिक नहीं होती। उत्खनित-साम्रगी विभिन्न स्तरों से प्राप्त होती है। विभिन्न स्तर सभ्यताओं की संख्या तथा उनके पूर्वापर क्रम का संकेत करते हैं। पर ये काल-निर्धारण में पर्याप्त रूप से सहायक नहीं होते। अत: विभिन्न विधियों की सहायता से तिथि-निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है। इन समस्त प्रकार की विधियों को दो पद्धतियों में समाहित किया जाता है। ये पद्धतियों सापेक्ष काल-निर्धारण-पद्धति एवं निरपेक्ष-काल-निर्धारण-पद्धति हैं। इन दोनों पद्धतियों से पुरातत्त्व से सम्बन्धित व्यक्ति काल के निर्धारण का प्रयास करते हैं।

सापेक्ष काल-निर्धारण पद्धति

सापेक्ष-काल-निर्धारण पद्धति में दो उपलब्ध वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन करके उनका समय निर्धारित करते हैं। इस विधि से किसी वस्तु, स्थान, सभ्यता इत्यादि का प्राचीन अथवा नवीन रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है। इस पद्धति से काल का अनुमान सदैव ठीक नहीं होता। विभिन्न सामग्रियों की सापेक्ष-पद्धति से काल-निर्धारण के लिए निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया गया है--

1. स्तरीकरण-- स्तरीकरण काल-निर्धारण की एक महत्त्वपूर्ण विधि है। पृथ्वी के विभिन्न अनुक्रम स्तर कहलाते हैं। मनुष्य तथा प्रकृति इन स्तरों का निर्माण करने में सहायक होते है। इनमें मुनष्य के प्रयत्न मुख्य होते हैं। ये स्तर समकालीन होने के साथ-साथ अनुक्रम से समय के अन्तराल से बने होते हैं। स्तरों से प्राप्त विभिन्न सामग्रियों का पूर्वापर क्रम निर्धारित हो सकता है। ऊपरी स्तर की वस्तु कम प्राचीन होती है तथा नीचे के स्तर से प्राप्त वस्तु उससे अधिक प्राचीन होती है। यदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किसी एक स्तर का काल-निर्धारण हो जाए तो अन्य शेष स्तरों की तिथि का अनुमान किए जाने में सहायता मिलती है।

2. प्रारूपिकी– पुरातत्त्व में उत्खनित प्राप्त पुरावशेषों का आकार-प्रकार,बनावट, रूप इत्यादि के आधार पर काल-निर्धारण प्रारूपिकी कहलाती है। निश्चित परिवर्तन अथवा विकास अथवा अवनति के लक्षण दृष्टिगोचर होने पर काल की निरन्तरता को क्रम-बद्ध किया जा सकता है। समान निर्माण-तकनीक एवं आकार-प्रकार होना उनको परस्पर समकालीन प्रमाणित नहीं कर सकता। पर उनके काल का मान अवश्य जाना जा सकता है। बाह्य समानताओं के आधार पर उत्खनित सामग्री को पाषाण-काल, कांस्य काल अथवा लौह-काल में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्राप्त पात्रों के चित्रण, अलंकरण इत्यादि भी काल को निर्धारित करने में सहायता हो सकते हैं। गेरुए मृद्भाण्ड, चित्रित धूसर मृद्भाण्ड, कृष्ण-मार्जित मृद्भाण्ड आदि का भी प्रारूपिकि विधि से काल-निर्धारण का प्रयास हो सकता है।

3. अन्योन्याश्रित काल-निर्धारण– एक उत्खनित वस्तु का समय ज्ञात होने पर दूसरे अज्ञात काल के उत्खनित पदार्थ की परस्पर तुलना करके समय निर्धारित करने की विधि अन्योन्याश्रित काल-निर्धारण विधि कहलाती है। सिक्कों पर प्रायः तिथि उपलब्ध होती है। उन पर प्राप्त लिपि के रूप की सहायता से अन्य लिखित वस्तु के काल-निर्धारण की सुविधा रहती है। इस विधि से काल-निर्धारण करने में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित होती है। क्योंकि बाढ़, वर्षा, धरती का कटाव, जनसंख्या का प्रवजन, पारस्परिक आक्रमण एवं सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण समय में त्रुटि होने की सम्भावना रहती है।

4. पुराजैविकी–विभिन्न पशुओं के स्वभाव एवं प्रकृति के परिवर्तन से उनके दूसरे स्थान पर प्रवजन के आधार पर तिथि-निर्धारण की विधि पुराजैविकी कहलाती है। प्रकृति के परिवर्तन के कारण विशाल पशु स्वयं को ढालने के लिए अन्य स्थान पर चले जाते हैं। इसी प्रकार वनस्पतियों की खोज में भी वे अन्य स्थानों की ओर प्रवास कर जाते हैं। अतः उनका अध्ययन सरल नहीं होता। उनका जीवन मनुष्य के जीवन के समान मुख्यतः वनस्पतियों पर आधारित होता हैं। अतः विशाल जन्तुओं का स्थान-परिवर्तन तथा छोटे पशुओं का स्थानान्तरण न होना पुराजैविकी पशुओं तथा वनस्पतियों की सापेक्ष तिथि-निर्धारण में सहायक होती है।

5. फ्लोरीन विश्लेषण–जीव-जन्तुओं की मृत्यु के पश्चात् उनके अवशेषों में फ्लोरीन नामक रसायन की वृद्धि होती रहती है। प्राप्त फ्लोरीन की मात्रा का अध्ययन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करके समय के निर्धारण की पद्धति फ्लोरीन विश्लेषण कहलाती है। यह विश्लेषण उपलब्ध हड्डियों से सम्बन्धित होता है। मृत्यु के पश्चात् शरीर का मांस-मज्जा गलकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। कुछ समय के बाद बाल भी नष्ट हो जाते है। केवल दांत तथा हड्डियां एवं सींग ही बचे रहते हैं। भूमि में दबे रहने पर उसकी आर्द्रता हड्डियों तथा दाँतों में पाये जाने वाले कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम तथा कार्बोनेट इत्यादि लवणों से मिलकर फ्लोरीन का संचय करते हैं। इसी संचित फ्लोरीन की मात्रा के आधार पर किया जाने वाला काल-निर्धारण फ्लोरीन विश्लेषण कहलाता है।

6. पुरापुष्पपरागण-विधि–पुष्पों के पराग कणों को एकत्र करके उनका परीक्षण करके काल-निर्धारण करना पुरा-पुष्प-परागण विधि कहलाती है। वनस्पतियों के प्रजनन के लिए पुष्पों के पराग-कण (पुंकेसर) मुख्य स्रोत होते हैं। परागपुट में वर्तमान परागकणों से फल एवं बीज उत्पन्न होते हैं। ये परागकण आर्द्र वातावरण, झीलों के तल, दलदल इत्यादि में दीर्घ काल तक सुरक्षित रहते हैं। क्षारीय मिट्टी, बालू, जली हुई स्थिति में ये नष्ट हो जाते हैं। फ्लोरीन विश्लेषण तथा पुरा-पराग-कण-विधियों में अध्ययन के लिए अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। दाँतों, हड्डियों, सींगों की फ्लोरीन की मात्रा की भिन्नता के साथ पराग-कणों के नमूने एकत्र करने में सावधानी में हुई चूक काल-निर्धारण को संशय से युक्त कर देती है।

निरपेक्ष काल-निर्धारण पद्धति

काल-निर्धारण की विभिन्न विधाओं में निश्चित पांचांग जैसे सहायक तत्त्वों द्वारा समय निर्धारण करने वाली पद्धति निरपेक्ष-काल-निर्धारण पद्धति कहलाती है। इस पद्धति में काल-निर्धारण के लिए अन्य विधियों अथवा आधार की आवश्यकता नहीं होती। यह पद्धति प्राकृतिक पदार्थों के निश्चित एवं निर्धारित क्षरण अथवा योग पर आधारित होती है। निरपेक्ष काल-निर्धारण पद्धति का निम्नलिखित विधियों से अध्ययन किया जाता है–

1. अनुवर्षस्तर विश्लेषण विधि–जिस विधि में भूतात्त्विक घटनों का कालक्रम सौर वर्षों के आधार पर निर्धारित किया जाता है उसे अनुवर्षस्तर-विश्लेषण विधि कहते हैं। इस विधि का प्रयोग हिम-नदियों वाले क्षेत्र में ही किया जा सकता है। हिम-नदियों का जल पिघलने के पश्चात् बहता हुआ यानी झील, खाड़ी तथा समुद्र में गिरता है। इस बहते हुए जल से भारी और हल्के दोनों प्रकार के कण गिरते हैं। इन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भारी कणों का जमाव नीचे तथा हल्के कणों का जमाव ऊपर होता है। प्रत्येक वर्ष इन दोनों का जमाव एक-दूसरे के ऊपर के स्तर पर होता जाता है। ये स्तर उनकी तिथि का निर्धारण करने में सहायक होती है। इस विधि के द्वारा पूर्व-पाषाण काल से लौह काल तक के लगभग 15000 वर्षों तक का काल-निर्धारण में सहायता प्राप्त हो सकती है।

2. वृक्ष-वलय से काल-निर्धारण– वृक्षों के तनों में प्रतिवर्ष एक वलय की रचना होती है। इन वलयों की गणना से उनके समय को जाना जा सकता है। उन वृक्षों के काष्ठ से बनी सामग्री का काल-निर्धारण किया जा सकता है। पर इस विधि से वृक्ष का समय जाना जा सकता है। उससे बनी सामग्री का नहीं। शुष्क वातावरण के कारण वलय बहुत संकरे होते हैं जबकि आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में वृक्षों के वलयों के मध्य दूरी अधिक होती है। इस विधि से लगभग 3000 वर्ष तक पुरावशेषों का काल-निर्धारण हो सकता है।

3. उष्मा-दीप्ति आधारित काल-निर्धारण– किसी पदार्थ को तपाने से उत्पन्न ताप ऊर्जा के रूप में होती है, इसे उष्मा-दीप्ति कहते हैं। इस पर आधारित काल-निर्धारण पद्धति उष्मा-दीप्ति पर आधारित काल-निर्धारण पद्धति कहलाती है। मिट्टी के बर्तन, ईंट, काँच इत्यादि 400^o से 1200^o सेंटीग्रेड तक के ताप में पकाया जाता है। इससे उन पर विभिन्न रेडियो-सक्रिय तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है। इन वस्तुओं का समय जानने के लिए उन्हें पुनः उनके तापमान तक पकाया जाता है। इससे उत्पन्न ऊर्जा को नाप कर उनका काल-निर्धारण किया जाता है। इस विधि से काल-निर्धारण में 10% की सम्भावित अशुद्धि रहती है जिसे दूर करने का आधार प्रयास एवं अनुमान पर निर्भर करता है।

4. रेडियों-कार्बन से काल-निर्धारण–विभिन्न जीवों तथा वनस्पतियों में वातावरण के प्रभाव से कार्बन की रचना तथा विघटन चलता रहता है। इसके प्रभाव के आधार पर काल-गणना रेडियो कार्बन आधारित समय निर्धारण अथवा C^{14} तिथि गणन विधि कहलाती है। अन्तरिक्ष की किरणें वायुमण्डल में स्थित विभिन्न परमाणुओं के संपर्क में आती हैं। इससे परमाणु-सम्बन्धी प्रतिक्रियायें होती हैं। इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के परमाणु छोटे-छोटे खंडों में विभक्त होकर न्यूट्रोन की रचना होती है। न्यूट्रोन नाइट्रोजन के साथ मिलकर प्रतिक्रिया स्वरूप कार्बन^{14} उत्पन्न करते हैं। वायुमण्डल में पहले से ही विद्यामान कार्बन को कार्बन^{12} कहते हैं। कार्बन^{12} में 6 प्रोटेन एवं 6 न्यूट्रोन होते हैं। कार्बन^{14} में 6 प्रोटेन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा 8 न्यूट्रोन होते हैं। जीव द्वारा भोजन एवं वनस्पतियाँ प्रकाश द्वारा वायुमण्डल से कार्बन-डाई-ऑक्साइड का अवशोषण करने से कार्बन^{12} तथा कार्बन^{14} पदार्थों में प्रवेश करते हैं। इनमें से कार्बन का निश्चित दर से धीरे-धीरे विघटन होता रहता है। यह विघटन जीवन काल के बाद भी जारी रहता है। जीवन-काल में इसकी क्षति-पूर्ति होती रहती है परन्तु जीवन की समाप्ति के पश्चात् क्षति-पूर्ति होनी बंद हो जाती है। इस प्रविधि में कार्बन^{12} में कोई परिवर्तन नहीं होता परन्तु कार्बन^{14} में परिवर्तन होने लगता है। इससे दोनों कार्बनों के अनुपात में अन्तर आने लगता है। इसी के क्षरण से आए अनुपात के अन्तर से किसी भी वस्तु के काल का निर्धारण किया जाता है। इस विधि के अनुसार कार्बन^{14} का अर्द्धजीवन 5568 (± 30) वर्ष से 5730 (± 40) वर्ष निर्धारित किया जाता है। अर्थात् लगभग 5568 से 5730 वर्षों में कार्बन^{14} की मात्रा आधी रह जाती है।

5. साहित्यिक बिन्दु– उपर्युक्त काल-निर्धारण की समस्त विधियाँ वैज्ञानिक-ज्ञान पर आधरित हैं। पर मानव जीवन परम्पराओं एवं संस्कृति से अधिक निकटता से जुड़ा है। इसके लिए मनुष्य साहित्यिक रचनाओं एवं प्रचलित लोक-कथाओं की सहायता की अपेक्षा रखता है। ऐसा ज्ञात बिन्दु जो अज्ञात समय से सम्बन्धित वर्णनों का काल-निर्धारण करने में सहायक होते हैं उन्हें साहित्यिक बिन्दु कहते हैं। यथा पाणिनि का समय ज्ञात होने पर उसके द्वारा प्रदत नियमों का आंशिक अथवा पूर्ण अनुसरण करने के उदाहरण उनके पूर्वापर होने का निर्धारण कर सकते हैं। इसी प्रकार नाट्यशास्त्र द्वारा विहित नियमों का कम अथवा पूर्ण अनुसरण भी रचनाओं के पूर्वापर निर्धारण में सहायक होता है। इन दोनों उदाहरणों में पाणिनि एवं भरत का नाट्य-शास्त्र एक बिन्दु है जो अन्य रचनाओं के काल-निर्धारण में सहायक हो सकते हैं। जब किसी एक रचना में किसी अन्य रचनाओं अथवा लेखक का उल्लेख होता है, उस स्थिति में भी उनके पूर्वापर-निर्धारण में सहायता मिलती है। कभी-कभी दो विभिन्न रचनाओं में समान वर्णन उपलब्ध होता है। इनमें से एक रचना का समय ज्ञात हो और वह कालान्तर की रचना हो तो भी दूसरी रचना का काल-निर्धारण हो सकता है। पाणिनि द्वारा अपनी व्याकरण में शाकल्य इत्यादि का समावेश उन्हें पाणिनि से पूर्ववर्ती सिद्ध करता है। इसी प्रकार यास्क द्वारा अपने निरुक्त में कौत्स का उल्लेख कौत्स को यास्क से पूर्ववर्ती प्रमाणित करता है। कुछ व्याकरणाचार्यों का पाणिनि एवं यास्क दोनों ही उल्लेख करते है, इस स्थिति में पाणिनि द्वारा वर्णित आचार्य यास्क से पूर्ववर्ती व्याकरण तथा निरुक्त दोनों से अवश्य पूर्ववर्ती स्थित होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुलकेशिन् के ऐहोल अभिलेख में कालिदास तथा भारवि का उल्लेख सिद्ध करता है कि ऐहोल से प्राप्त अभिलेख के समय (634 ईस्वी) तक दोनों कवियों की प्रसिद्धि चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और दोनों उस से पूर्व समय से सम्बन्धित हैं। छठी शताब्दी ई० के मन्दसौर तथा नालन्दा से प्राप्त अभिलेखों में कालिदास की रचनाओं की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। यह वर्णन भी कालिदास का उनसे पूर्ववर्ती होना प्रमाणित करता है। भास के नाटकों की शैली कालिदास के नाट्य–शैली जितनी परिपक्व नहीं है। इससे संकेत प्राप्त होता है कि भास अवश्य ही कालिदास से पूर्ववर्ती हैं। अतः कालिदास भास के बाद के तथा मन्दसौर के लेखों के पूर्ववर्ती कवि हैं।

लेखन–शैली तथा लिपि किसी समय विशेष में समान होती है। जब एक ही लिपि में लिखे भिन्न लेख प्राप्त होते हैं, उनमें से एक का समय स्पष्ट हो तो दूसरे का सम्बन्ध स्थापित करने में सुविधा रहती है। किसी राजा का लेख उपलब्ध हो पर उसकी लिपि बाद की लिपि के उदाहरणों के समान हो उस स्थिति में उस लेख के नकली होने का संदेह होता है। मेहरौली से प्राप्त चन्द्र के लेख की विषय–वस्तु उसे समुद्रगुप्त से बाद का होना प्रमाणित करता है। समुद्रगुप्त द्वारा जीत कर स्वतन्त्र छोड़े गए राजाओं ने समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त–साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। चन्द्र ने उन सब को नष्ट कर दिया। अतः चन्द्र ही समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) स्पष्ट होता है।

साहित्यिक रचनाओं में समय के साथ–साथ भाषा विभिन्न रूपों प्रभाव दिखाती रहती है। उसमें प्रक्षिप्त–अंशो का समावेश होता रहता है। पाठों की भिन्नता समय तथा स्थान से प्रभावित भिन्न स्वरूप को प्रदर्शित करती है। लेकिन अभिलेख खुदे होने के कारण किसी भी परिस्थिति में बदल नहीं सकते । उनकी भाषा तथा लेखन–पद्धति स्थिर हो जाती है। अतः अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा का स्वरूप अपने समय की भाषा का प्रतिबिम्ब होता है। यह उस समय की प्रयुक्त भाषा का मानक होता है। अशोक के लेख प्राकृत में लिखित है। इससे भाषा–शास्त्रियों ने अनुमान लगा लिया कि उसके समय में संस्कृत भाषा का प्रयोग नहीं होता है। अशोक के कुछ समय के पश्चात् के लेखों में प्राकृत का प्रयोग कम होने लगा तथा संस्कृत भाषा का आधिपत्य हो गया। पर कतिपय उदाहरणों की उपलब्धि प्रदर्शित करती है कि प्राकृत एवं संस्कृत दोनों का प्रयोग द्वितीय–तृतीय शताब्दी ईस्वी में बहुतायत से होता था। 'कर्म' के लिए 'कर्म्म' 'आर्य' के लिए 'आर्य्य' इत्यादि प्रयोग से स्पष्ट होता है कि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'अचो रहाम्यां द्वे' सूत्र का प्रयोग लम्बे समय तक साहित्य में होता रहा। परन्तु प्रकाशित साहित्य में प्रयत्न-लाघव ने इसे विकल्प से लुप्त कर दिया।

महाभारत के संदर्भ में द्रष्टव्य है कि अभिलेखों में महाभारत का नाम 'शतसहस्त्री संहिता' 534 ई० के खोह से प्राप्त एक अभिलेख में सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। इससे महाभारत में स्पष्ट होता है कि छठी शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में एक लाख श्लोकों का संचय हो गया था। इससे लगभग इसी समय से 'व' के स्थान पर 'ब' तथा 'ब' के स्थान पर 'व' एवं 'श' के स्थान पर 'स' और 'स' के स्थान पर 'श' का प्रयोग होना प्रारम्भ हो चुका था। लेखों में प्रयुक्त तिथियां समकालीन नरेशों का काल निर्धारण करने में सहायक होती है। अशोक के तेरहवें लेख में अनेक समकालीन विदेशी शासकों के नाम उल्लिखित हैं। उनकी ज्ञात तिथियों से परस्पर समकालीन निर्धारित की जा सकती है। यूनान का राजा अन्तियोकस ईस्वी पूर्व 261 से 246 तक, टलेमी ईस्वी पूर्व 282 से 247 तक शासन करते हैं। इनकी ज्ञात तिथियों से समकालीन शासक अशोक का समय जाना जा सकता है। प्राप्त तिथि 282 में से अशोक के अभिलेख के आठवें वर्ष के साथ सिंहासनारूढ होने के चार वर्ष पहले, अर्थात् कुल बारह वर्ष घटा देने से 270 ई०पू० का समय अशोक के शासन होने की तिथि का संकेत दे देता है।

ईस्वी संवत् के प्रारम्भ तक संस्कृत साहित्य में गद्य लेखन प्राय: उपलब्ध नहीं होता। कवियों की पद्यात्मक रचनाएं प्राप्त होती है; परन्तु गद्य को कवियों का निकष कह कर भी गद्य-लेखन का अभाव आश्चर्यजनक है। इस निकष रूप गद्य में प्रारम्भिक विशद साहित्यिक रचना रुद्रदामन का अभिलेख प्राप्त होता है। इससे संकेत मिलता है कि उस समय के संस्कृत गद्य-लेखन पर्याप्त रूप से प्रचलित एवं विकसित रूप में था। गुप्त कालीन अभिलेखों से ऐसे अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं जिनका अमरकोश में उल्लेख नहीं है। इससे संकेत प्राप्त होता है कि अमरकोश गुप्त-काल से पूर्ववर्ती रचना है।

अभिलेखों में प्राप्त संख्याओं का स्थान आधुनिक दशमलव पद्धति के समान ही है। संख्याएँ दायें से बायें ओर लिखित प्राप्त होती है। यदि 265 संख्या लिखी जानी है तो 200 60 और 5 अंकित किया जाएगा। इसमें दायें से सर्वप्रथम इकाई, फिर बायीं ओर दहाई तत्पश्चात् सैकड़ा क्रम से लिखा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक प्रकार का अंकों का स्थानीय मान भारत में ईस्वी संवत् के प्रारम्भ में पर्याप्त रूप से ज्ञात था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुख्य संवत्

अभिलेख तिथि-क्रम जानने में महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। किसी घटना, विजय-यात्रा आदि को आधार बना कर समय का उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होता है। इनमें मुख्य रूप से दो रूपों में वर्णन प्राप्त होता है-राज्य वर्ष एवं तिथियाँ। इनमें तिथियां को कालान्तर में संवत् के साथ जोड़ दिया जाता है अथवा नवीन संवत् के रूप में उनकी गणना की जाने लगती है। बडली से प्राप्त स्तम्भ लेख में 'वीराय भगवते चतुरासिति वसे' में तिथ्यंकन का प्राचीनतम उल्लेख प्राप्त होता है। यह वीर भगवान के चौरासीवें वर्ष का उल्लेख है। राज्य वर्ष किसी घटना का स्मरण-रूप होता है। अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष से सत्ताइसवें वर्ष तक का उल्लेख किया है। ये वर्ष मौर्य संवत् के हैं अथवा नहीं यह स्पष्ट नहीं। परन्तु खारवेल के अभिलेख में मुरियकाल (मौर्यकाल) 165 का वर्णन संकेत करता है कि अशोक द्वारा प्रदत्त गणना कालान्तर में एक संवत् का रूप प्राप्त कर गई होगी। खारवेल के लेख में प्रथम से तेरहवें वर्ष तक की घटनाओं का वर्णन है। विभिन्न लेखों में निम्नलिखित रूप से वर्षों का परिज्ञान होता है-

सातवाहन गौतमीपुत्र शातकर्णी-18 एवं 24 वाँ वर्ष

पुलुमवि-7, 19, 22 एवं 24 वाँ वर्ष

यज्ञश्रीशातकर्णी-सातवाँ वर्ष

कुषाण नरेश 3 से 80 तक के वर्षों का अंकन करते हैं।

इनकी संख्याओं के साथ संवत् शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। यह शक संवत् माना जाता है। शक का नामोल्लेख लम्बे समय तक प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रकार विक्रम संवत्, गुप्त आदि संवतों के नाम प्रारम्भ में प्राप्त नहीं होते। उत्तर-पश्चिमी भारत के लेखों में ग्रीष्म, वर्षा, शरद् ऋतु के साथ-साथ पक्ष एवं वार का उल्लेख प्राप्त होता है। शक, कुषाण तथा क्षत्रपों के लेखों में मास एवं तिथि की संख्या मिलती है। इस प्रकार ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में वर्ष को तीन विभागों में मुख्य रूप से विभक्त किये जाने का उल्लेख गया है- वर्षा, शीत तथा ग्रीष्म। तत्पश्चात् पक्ष के द्वारा समय का वर्णन है। गुप्त काल के लेखों से मासों के नाम का उल्लेख मिलना शुरू हो जाता है।

विभिन्न संवतों में, विक्रम संवत् का प्रचार उत्तर भारत में निर्बाध चलता रहा। राजपुताना एवं मध्य भारत में यह लोकप्रिय था। शक राज्य नष्ट हो जाने पर उज्जैन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में यह संवत् प्रारम्भ हुआ जो सारे उत्तर भारत में फैला। मालवा तथा महाराष्ट्र के शासक क्षत्रप नरेश शक संवत् का ही प्रयोग करते थे। गणित-शास्त्र में शक गणना की प्रमुखता तथा उत्तर भारत में विक्रम संवत् के प्रचलन होने के कारण ज्योतिष में पत्रों में दोनों संवतों का समान रूप से उल्लेख किया गया है।

1. मौर्य संवत्– मौर्य संवत् की गणना का आरम्भ किसने आरम्भ किया गया, यह स्पष्ट नहीं है। इसका प्रारम्भ चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया अथवा बिन्दुसार ने अथवा अशोक ने किया, यह पूर्णतया निर्धारित नहीं है। अधिकांशतः यही माना जाता है कि नंद-वंश को नष्ट करके चन्द्रगुप्त ने 321 ईसा पूर्व के आस-पास मौर्य राज्य की स्थापना की थी। अतः सम्भव है कि इसी घटना से इस संवत् प्रारम्भ हुआ हो। अशोक ने भी यदि इसका प्रारम्भ किया तो वह उसके अभिषेक की तिथि से हुआ अथवा बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने से हुआ यह सब पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। अशोक ने अपने विभिन्न प्रज्ञापनों में अनुशासन अंकित करवाये। इनमें अनेक स्थानों पर वर्षों का उल्लेख किया गया। अशोक के पौत्र दशरथ ने भी अपने लेखों में तिथि उद्धृत की हैं। अशोक ने अपने लेखों में आठ से सत्ताईस वर्षों का प्रयोग किया है। अशोक ने जिन वर्षों का उल्लेख किया वे किसी भी संवत् से युक्त नहीं हैं। अशोक ने अपने अभिषेक से तिथि-गणना का उल्लेख किया है। अतः अशोक की वर्षों की गणना चन्द्रगुप्त द्वारा किसी संस्थापित संवत् से सम्बद्ध नहीं हो सकता। इस गणना में अभिषेक के वर्ष का उल्लेख है, मास, ऋतु, तिथि, पक्ष इत्यादि वर्णित नहीं है। इसके पश्चात् हाथीगुम्फा से प्राप्त खारवेल के लेख में मौर्य संवत् का उल्लेख मिलता है। इस लेख में 165 वें मौर्य काल का वर्णन है। इस संवत् का कहीं अन्य स्थान पर उदाहरण प्राप्त नहीं होता। विभिन्न विद्वानों में खारवेल के अभिलेख में उल्लिखित संवत् को मौर्य संवत् मानने में पर्याप्त मतभेद है। इस संवत् के प्रयोग के साथ-साथ खारवेल के अभिलेख में तेरह शासन-वर्षों का स्वतन्त्र प्रयोग भी प्राप्त होता है।

2. विक्रम-संवत्–ईसा पूर्व 57 में भारत में एक संवत् की स्थापना हुई। इसे कृत संवत्, मालव संवत् एवं विक्रम संवत् के नाम से जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि मालवों के गणों के मुख्य, जिसे विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता है, ने आततीय शकों को परास्त किया। इससे उनकी अराजकता समाप्त हो गयी। देश में सुख तथा शान्ति स्थापित हो गई। मानों सत्य युग अथवा कृत युग की स्थापना हो गई। अतः इस का नामकरण कृत संवत् हो गया। बाद के समय में अवन्ति के उत्तर-पूर्व भू-भाग के निवासी मालव-राज के प्रयत्नों से उपद्रव शान्त हो गए। अतः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छठी शताब्दी ईस्वी से इसे मालवों के संवत् के रूप में जाना गया। उनके विशेष पराक्रम के प्रदर्शन के फलस्वरूप इसे विक्रम संवत् नाम दे दिया गया। विक्रम नामक किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता जिसके द्वारा प्राप्त विजय की याद में काल गणना किसी रूप में प्रारम्भ की गई हो। प्रारम्भ में छठी शताब्दी ईस्वी तक इसको कृत-संवत् के नाम से जाना गया। नरवर्मन के 461 वें वर्ष के मन्दसौर अभिलेख में इसका मालव एवं कृत दोनों नामों का वर्णन एक साथ मिलता है। नरवर्मन के वर्ष 461 के मन्दसौर अभिलेख में मालव और कृत नाम एक ही स्थान पर दृष्टिगोचर हो जाते हैं। तत्पश्चात् इसका नाम केवल मालव संवत् ही प्राप्त होता है। नौवीं शताब्दी ईस्वी के बाद इसका नाम विक्रम संवत् प्राप्त होने लगा। उत्तरी भारत में यह संवत् चैत्र मास के शुक्ल पक्ष से तथा दक्षिणी भारत में कार्त्तिक मास को शुक्ल पक्ष की प्रथमा से प्रारम्भ मनाते हैं। पुनश्च कृत नाम कार्त्तिक का रूप भी हो सकता है। जो वर्ष के कृतिका नक्षत्र से सम्बन्धित है। अभिलेखों में 282 से 1103 वर्ष तक का इस संवत् का उल्लेख प्राप्त होता है।

3. शक संवत्–शकों द्वारा मालवों को परास्त कर नया संवत् प्रारम्भ किया गया, इसी को शक-संवत् के नाम से जाना जाता है। फर्गुसन बनर्जी, राय चौधरी तथा आल्डेन वर्ग का मत है कि कनिष्क ने शक-संवत् प्रारम्भ किया। फ्लीट इस मत का निराकरण करते हैं। जैन ग्रन्थ 'प्रभाकरचरित' का कोलकाचार्य कथा में उपलब्ध विवरण के अनुसार 'विक्रम के उत्तराधिकारी को विक्रमादित्य के 135 वे वर्ष में मार दिया गया था। उसी काल से शक-गणना का प्रारम्भ हुआ।' विक्रम संवत् 57 में 135 वर्ष से घटने पर (135-57) ईस्वी संवत् 78 आता है। यह भी सम्भावना व्यक्त की जाती है कि जूनागढ़ के रुद्रदामन के दादा चष्टन ने शक संवत् की गणना प्रारम्भ की। एक अन्य मत के अनुसार कनिष्क ने काल गणना प्रारम्भ की जो कालान्तर में शक-संवत् के रूप में प्रसिद्ध हुई। कुषाण वंश के लेखों तथा पश्चिम भारतीय क्षत्रपों की प्रशस्तियों तथा सिक्कों पर इसी संवत् की गणना प्राप्त होती है। पांचवी शताब्दी ईस्वी से बारहवीं शताब्दी तक के लेखों में शक संवत् का प्रयोग प्राप्त होता है। शक-क्षत्रप आरम्भ में कुषाणों के सामन्त रहे हैं अत: स्वतन्त्र शासक बनने पर उनके द्वारा प्रयुक्त संवत् का ही नाम बदल कर प्रयोग करने लगे। शक संवत् की स्थापना के लगभग पाँच शताब्दियों के बाद के लेखों में 'शकाब्द' तथा 'शक-नृप-काल' का उल्लेख प्रमाणित करता है कि जनमानस में शक काल गणना का ज्ञान था। मध्य-युग तक शक संवत् के साथ जुड़ी विदेशी की भावना लुप्त हो गई। वराहमिहिर ने अपनी रचनाओं में, जैन लेखकों ने गुजरात में, कन्नड एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्नाटक के लोगों ने, उत्तरी बिहार और नेपाल के लिच्छिवियों ने शक संवत् का प्रयोग किया। चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में दक्षिण भारत में राजनैतिक परम्परा में प्रसिद्ध शालिवाहन (सातवाहन) नरेशों द्वारा प्रयोग में लाने के कारण शक संवत् के साथ शालिवाहन नाम जुड़ गया।

4. गुप्त संवत्–प्राचीन काल में भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक काल-गणनाएँ प्रचलित हो गई थीं। इन्हें अलग-अलग नरेशों ने प्रारम्भ किया गया था। इसी परम्परा में गुप्त नरेशों ने भी अपनी काल-गणना प्रारम्भ की। यही काल-गणना 'गुप्त-संवत्' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस संवत् की स्थापना किस शासक ने प्रारम्भ की-यह निश्चित नहीं है। परम्परा यही है कि शासन के स्थिर हो जाने पर तिथि का उल्लेख आरम्भ होता है। इसका अनुसरण बाद के नरेश करते हैं। इस का प्रारम्भ में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के लेखों में प्रयोग प्राप्त है। सम्भव है कि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने गुप्त-साम्राज्य के संस्थापक श्री गुप्त का नाम देकर चन्द्रगुप्त (प्रथम) के समय से अपनी काल-गणना प्रारम्भ की हो। अल्बेरूनी ने उल्लेख किया है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी जो 'गुप्त काल' या 'गुप्त-संवत्' के नाम से जाना जाता है। जनश्रुतियों पर आधारित उसके वक्तव्य के अनुसार गुप्त संवत् शक-संवत् के 241 वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुआ। जैनग्रन्थों से भी इस तथ्य की पुष्ट होती है। स्कन्दगुप्त की जूनागढ़ प्रशस्ति अभिलेख में 'गुप्तकाल' के रूप में समय का उल्लेख किया गया है। प्रायः समस्त गुप्त लेखों में एक ही प्रकार की तिथि का उल्लेख प्राप्त होता है। गुप्त-सम्राटों के सामन्त परिव्राजक राजाओं के लेखों में गुप्त नामक तिथि का गणना का उल्लेख है। गुप्त-सम्राटों के सामन्त परिव्राजक नरेशों 'गुप्तनृपराज्यभुक्तौ' के रूप में गुप्त-संवत् का प्रयोग किया गया है। कालान्तर में वलभी के नरेशों ने गुप्त संवत् को वलभी-संवत् के नाम से प्रयोग किया।

5. हर्ष संवत्– थानेश्वर के सम्राट् हर्षवर्धन ने राज्य से सम्बन्धित एक गणना प्रारम्भ की। यह गणना 'हर्ष-संवत्' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गणना के साथ हर्ष का नाम प्राप्त नहीं होता। उसके ताम्र-पत्रों के लेखों में वैसे ही तिथियां उल्लिखित है। जिस प्रकार प्रत्येक संवत् प्रारम्भिक काल में बिना नाम से ही वर्णित होते हैं। हर्ष के बांसखेड़ा लेख में बाईसवें तथा मधुबन ताम्र-पत्र लेख में पच्चीसवें संवत् का उल्लेख मिलता है। अल्बेरूनी के अनुसार विक्रमादित्य के 664 वर्ष बाद हर्ष वर्धन ने राज्य किया। यह तथ्य (664-57) 606-07 ई० से हर्ष संवत् का तिथ्यकंन निश्चित करता है। चीनी यात्री ह्वेन्सांग शिलादित्य (हर्ष) 642 ईस्वी में हर्ष के दरबार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में रहा था। उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि 648 ईस्वी में हर्ष 36 वर्ष राज्य कर चुका था। हर्ष संवत् का प्रयोग कुछ समय तक उत्तर भारत एवं नेपाल में रहा। कालान्तर में यह विक्रम संवत् के प्रभाव से वहाँ से लुप्त हो गया। बाण के वर्णन में हर्ष तथा माधवगुप्त को मित्र बताया गया है। अफसद अभिलेख में आदित्यसेन के पिता का नाम माधवगुप्त को मित्र बताया गया है। अफसद अभिलेख में आदित्यसेन के पिता का नाम माधवगुप्त वर्णित है जो हर्ष के मित्र के रूप में उल्लिखित है। आदित्यसेन का शाहपुर लेख 66 वें वर्ष का है अतः 672 ईस्वी (606+66) समय का निर्धारित होता है। इसी वंश के एक अन्य शासक विष्णु गुप्त का मंगराव लेख 117 वें वर्ष का है जो निश्चित रूप से हर्ष संवत् से सम्बन्धित है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

12

अशोक का गिरनार शिलालेख (प्रथम)

इयं धंमलिपी देवानंप्रियेन प्रियदसिना राञा लेखापिता इध न किं चि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियदसि राजा अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो पुरा महानसम्हि देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो अनुदिवसं बहूनि प्राणसतसहस्त्रानि आरभिसु सूपाथाय से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सो पि मगो न ध्रुवो एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे

संस्कृतरूपान्तर

इयं धर्मलिपिः देवानांप्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। इह न कश्चित् जीवः आलभ्य प्रहोतव्यः न च समाजः कर्तव्यः। बहुकं हि दोषं समाजे पश्यति देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा सन्ति अपि च एकतराः समाजाः साधुमताः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः। पुरा महानसे देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः अनुदिवसं बहुनि प्राणशतसहस्राणि आलभ्यन्त सूपार्थाय। तद् अद्य यदा इयं धर्मलिपिः लेखिता त्रयः एव प्राणाः आलभ्यन्ते-द्वौ मयूरौ एकः मृग। सः अपि च मृगः न ध्रुवम्। एते अपि च त्रयः प्राणाः पश्चात् न आलप्स्यन्ते।

हिन्दी अनुवाद

यह धर्मलिपि देवानां प्रिय (देवताओं के प्रिय) प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखायी गयी। यहाँ कोई जीव मारकर हवन न किया जाए और न समाज किया गया। क्योंकि बहुत दोष समाज में देवानां प्रिय (देवताओं के प्रिय) प्रियदर्शी राजा देखते हैं। ऐसे भी एक प्रकार का समाज देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के मत में साधु है। पहले देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई लाख प्राणी सूप के लिए मारे जाते थे परन्तु आज जब यह धर्मलिपि लिखायी गयी तीन ही प्राणी मारे जाते हैं- दो मोर और एक मृग। वह मृग भी निश्चित (रूप से) नहीं। ये भी तीन प्राणी बाद में नहीं मारे जाएँगे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

13
अशोक का सारनाथ लघु शिलालेख

देवा(नंपिये पियदसि लाजा आनपयति) ए ल पाट...........ये केनपि संघे भेतवे ए चुं खो भिखू वा भिखुनि वा सघं भाखति से ओदातानि दुसानि संनंधापयिया आनावाससि आवासयिये हेवं इयं सासने भिखुसंघसि च भिखुनिसंघसि च विनंपयितविये हेवं देवानंपिये आहा हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवाति संसलनसि निखिता इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ ते पि च उपासका अनुपोसथं यावु एतमेव सासनं विस्वंसयितवे अनुपोसथं च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये याति एतमेव सासनं विस्वंसयितवे आजानितवे च आवतके च तुफाकं आहाले सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन हेमेव कोटविषवेसु एतेन वियंजनेन विवासापयाथा

संस्कृतरूपान्तर

देवा (नांप्रियः प्रियदर्शी राजा आज्ञापयति) (पाट)लपुत्रे महापात्राः (ते)-(मया) संघः समग्रः कृतः। पाट(लपुत्रे तथा बाह्येषु नगरेषु तथा कर्तव्यं येन न श)क्यः केनापि सङ्घः भेत्तुत्। यः तु खलु भिक्षुः वा भिक्षुणी वा सङ्घं भङ्क्ष्यति, सः अवदातानि दूष्याणि सन्निधाप्य अनावासे आवास्यः। एवम् इदं शासनं भिक्षु-सङ्घे भिक्षुणी-सङ्घे च विज्ञपयितव्यम् एवं देवानांप्रियः आह-ईदृशी च एका लिपिः युष्माकम् अन्तिके भूयात् इति संसरणे निक्षिप्ता एकां च लिपिम् ईदृशीम् एव उपासकानाम् अन्तिके निक्षिपत। ते अपि उपासकाः अनूपवसथं यायुः एतत् एव शासनं विश्वासयितुम्। अनूपवसथं च ध्रुवायाः एकैकः महामात्रः उपवसथाय याति एतत् एव शासनं विश्वासयितुम् आज्ञातुं च। यावत्कं च युष्माकम् आहारः सर्वत्र विवासयत यूयं एतेन व्यञ्जनेन। एवम् एव सर्वेषु कोट्ट-विषयेषु एतेन व्यञ्जनेन विवासयत।

हिन्दी अनुवाद

देवा(नांप्रिय प्रियदर्शी राजा आज्ञा करते हैं-) (जो पाटलिपुत्र में महामात्र हैं उनके प्रति-मेरे द्वारा संघ को समग्र (संघटित) किया गया) पाटलिपुत्र तथा अन्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नगरों में ऐसा करना चाहिए जिससे) किसी द्वारा संघ का भेदन करना शक्य न हो। "जो भी कोई भिक्षु अथवा भिक्षुणी संघ का भंग करेगा उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर अयोग्य स्थान में रखा जायेगा। इस प्रकार यह शासन (आज्ञा) भिक्षु-संध में विज्ञप्त होनी चाहिए।" इस प्रकार देवानांप्रिय ने कहा, इसी प्रकार की एक लिपि आप लोगों के पास चौपाल (अर्थात् एकत्र होने के साथ) में सुरक्षित होनी चाहिये। और इसी प्रकार की लिपि आप उपासकों (गृहस्थों) के पास रखें। ये उपासक प्रत्येक उपवास के दिन आएं इस शासन में विश्वास उत्पन्न करने के लिए। उपवास के दिन निश्चित रूप से प्रत्येक महामात्र उपवास (व्रत) के लिए आयेगा इस शासन में विश्वास प्राप्त करने और इसको अच्छी तरह समझने के लिए। और जहाँ तक आपका (कार्य-क्षेत्र) है सर्वत्र भेजिये आप (राजपुरूषों को) इस (शासन का) अक्षरतः पालन करते हुए। इसी प्रकार सभी कोट और विषयों में इस शासन के अक्षरशः अनुसार (अधिकारियों की) भेजिये।

अशोक-एक परिचय

मौर्य अशोक प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् है। उसका राज्य अपने समय में चरमोत्कर्ष पर था। उसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दुकुश से लेकर ब्रह्मपुत्र घाटी तक एवं उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चोल, पाण्डय तथा केरल की सीमा तक फैला हुआ था। अभिलेखों में उसका नाम देवानांप्रिय प्रियदर्शी उल्लिखित है। केवल मास्की से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक ही है कोई अन्य नरेश नहीं। अशोक के विषय में साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक सामग्री सहायक है। दीपवंश, महावंश एवं उसकी टीकाएं, दिव्यावदान, अशोकावदान माला, आर्यमंजुश्रीमूलकल्प जैसे बौद्ध-ग्रन्थ, पुराण, राजतरंगिणी, चीनी ग्रन्थ तथा चीनी यात्रियों के वर्णन अशोक-विषयक साहित्यिक स्रोत हैं। शिलालेख, स्तम्भलेख एवं गुहा-लेख अशोक-विषयक पुरातात्त्विक स्त्रोत हैं। प्रारम्भ में अशोक क्रूरता के लिए जाना जाता है अतः उसे 'चण्डाशोक' भी कहा जाता है। सम्राट् बनने से पूर्व उसने प्रान्तीय शासक जैसे पदों का निर्वहन भी किया। वह व्यक्तिगत रूप से बौद्ध-धर्म का अनुयायी बना। उसने बौद्ध-स्थलों की यात्रा की, तृतीय बैद्ध-संगीति का आयोजन किया, बौद्ध-स्मारकों का निर्माण किया, युद्ध का परित्याग तथा नैतिक-उत्थान पर बल दिया।

अशोक ने अपने लेखों को 'धम्म' लेख कहा है। धम्म का अभिप्राय बताते हुए वह कहता है 'अपासिन वे बहुकयाने दया दाने सोचये' अर्थात् पापरहितता,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बहु-कल्याण, दया, दान, सत्यता तथा शुद्धि ही धम्म है। लोक-हित की इस भावना को अशोक ने अनेक लेखों में अभिव्यक्त किया है। वह धार्मिक दृष्टि से उदार था। उसने सलाह तो दी पर जन-सामान्य पर उसे प्रत्यारोपित नहीं किया। उसने प्रजा के इहलोक तथा परलोक में सुख की कामना की है। यह एक सदाचार का धम्म था। वह स्वयं बौद्ध-धर्म का अनुयाथी था। गौतम बुद्ध से सम्बन्धित समस्त स्थानों की उसने यात्रा की थी। अशोक द्वारा प्रचलित धम्म में मानवता के कल्याण के लिए उपयोगी नैतिक नियम थे। अशोक ने अभिषेक के दस वर्ष पश्चात् धर्मोपदेश करना प्रारम्भ किया था। अशोक ने बौद्ध-धर्म के साथ-साथ सभी धर्मों का सामञ्जस्य बनाए रखा। यह एक धर्मसहिष्णुवादी था। उसने समवाय एवं वचोगुप्ति (धार्मिक एकता एवं धार्मिक आलोचना पर नियन्त्रण) पर जोर दिया। उसने इच्छा प्रकट की सभी सम्प्रदाय (धर्म) बहुश्रुत तथा कल्याण-युक्त हों। वह ब्राह्मणों एवं श्रमणों के प्रति दानशीलता का उपदेश देता है। सभी धर्मों की उन्नति को ही वास्तविक उन्नति मानता है। उसके लिए धर्म-विजय ही सर्वोच्च हो गयी थी। अशोक ने मृदुता, साधुता, संयम, भाव शुद्धि, दृढभक्ति, धर्मानुराग, आत्म-निरीक्षण सुश्रूषा, धर्मानुशासन, धर्मदान को महत्त्वपूर्ण माना। साथ ही चण्डिय (उग्रता), निठुलिए (निष्ठुरता), क्रोध, माने (धमण्ड), इस्या (ईर्ष्या) से बचने का अनुरोध भी किया। 'पानानं अनालंभे' (प्राणियों की अहिंसा) साधु अपवियता (अधिक व्यय न करना) 'अपभण्डता (अधिक संचयन करना), मित्र,परिचित, सम्बन्धी, ब्राह्मण, श्रमणों इत्यादि के साथ भली-भाँति व्यवहार एवं सेवा को अशोक श्रेयस्कर मानता हैं। लोक-कल्याण की भावना को उसने न केवल स्वयं अपनाया अपितु वह औरों को भी प्रेरित करता है। उसने मार्गों पर वृक्ष लगवाए जिससे मनुष्य एवं पशुओं को छाया मिले। उनके लिए मार्गों में कूप खुदवाए तथा धर्मशालाएं बनवायीं। मनुष्यों तथा पशुओं के लिए जहाँ औषधिया (वृक्ष), मूल एवं फल इत्यादि नहीं है वहाँ अन्य स्थानों से लाकर उनका प्रावधान किया। इसी प्रकार चिकित्सालयों की व्यवस्था भी की। उसे धर्म के पालन में किसी भी प्रकार की लापरवाही पसन्द नहीं थी। संघ में भेद करने वाले किसी भी प्रकार का प्रयत्न उसे असहनीय था। यदि कोई मिक्षु अथवा भिक्षुणी भी भेद करते पाये गए तो उसको दण्ड-स्वरूप श्वेत-वस्त्रों में ऐसे स्थान पर भेजने की धमकी दी जहाँ जाना उनके लिए अपयशकारी होता। अशोक ने अनेक धर्मानुशासनों के लिए आज्ञाएँ घोषित की थीं। इसके प्रचार तथा प्रसार के लिए उसने अधिकारियों की नियुक्ति की। धर्ममहामात्र एवं स्त्र्य्यक्षमहामात्रा उनमें प्रमुख थे। समाज-सुधार की भावना से दुराचार युक्त समाज (क्लब) को बंद करके सदाचार एवं कल्याण की भावना युक्त समाज की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रोत्साहित किया। अशोक का सामान्य निर्देश था कि किसी को भी अकारण पीड़ित न किया जाए। लोगों को स्पष्ट आमन्त्रण था कि वे अशोक के किसी को भी अवस्था में होने पर उसे अपनी समस्या से अवगत करायें। प्रजा के हित के लिए उसकी यह एक महत्त्वपूर्ण घोषणा थी। न्याय के लिए युक्त, रज्जुक, प्रादेशिक, नगर-व्यावहारिक जैसे पदाधिकारी नियुक्त थे। अशोक ने दण्ड की कठोरता को कुछ स्तर तक कम दिया था। अभिषेक के दिनों पर बन्दियों को मुक्त करने का प्रावधान किया। अहिंसा की भावना से उसने अपने भोजनालय में मारे जाने वाले अनेकों जीवों की हत्या बंद करवा दी। केवल तीन ही प्राणियों को भोजन के लिए मारे जाने की आज्ञा दी। ये तीन प्राणी-दो मोर तथा एक हरिण-थे। सम्भवतः मोर अशोक का प्रिय आहार था। वह मध्य प्रदेश में एक लम्बे समय तक युवराज काल में नियुक्त रहा था। वहाँ मोर को प्रिय भोजन माना जाता था। अतः स्वभाव बन जाने के कारण उसने दो मोर भोजन के लिए मारे जाने की अनुमति दी थी। यद्यपि उसका निर्देश था कि ये तीन प्राणी भी बाद में मारे नहीं जाएंगे।

अशोक उदार, सहिष्णु तथा व्यापक विचारों वाला व्यक्ति था। उसने सीमान्त पर भी वे सब प्रावधान किए जिन्हें वह प्रजा के लिए चाहता था। उसकी इच्छा थी कि सीमान्त के लोग तथा सीमा पार के लोग भी जान लें कि वह प्रजा के सर्वांगीण कल्याण के लिए अत्यधिक सजग था। उसने मानव के नैतिक उत्थान पर बल दिया जिससे निर्वाण का मार्ग प्रशस्त हो सके। बहु-कल्याण उसके धर्म का मूल रूप परिलक्षित होता है। उसने केवल प्रेरित ही नहीं किया अपितु स्वयं भी ऐसा ही आचरण किया। नैतिक एवं धार्मिक-प्रगति के लिए, प्रजा की समस्याएँ जानने के लिए, उनका निराकरण के लिए प्रत्येक पांच वर्ष में राज्य में दौरा करने का निर्देश था। यह दौरा अधिकारियों के मुख्य कार्य के अतिरिक्त था। आवागमन सुचारु करने के लिए उसने आधुनिक प्रसिद्ध जी.टी. रोड अपने कार्यकाल में ही बनवा दी थी।

अशोक के द्वारा अपने लघु स्तम्भ-लेखों में भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए दिशा-निर्देश जारी किए गए। उनके लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के मार्गों को निर्धारित कर दिया गया। इस प्रकार के निर्देशों से प्रतीत होता है कि अशोक के समय तक संघ की एकता नष्ट होने की ओर बढ़ चली थी। इसको रोकने लिए संघ को एकता को नष्ट करने में प्रयत्नशील भिक्षु तथा भिक्षुणियों को अशोक ने कड़ी चेतावनी दी। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए अशोक ने तृतीय संगीति वैशाली में आयोजित की। यद्यपि उसने संगीति के आयोजन का उल्लेख अपने लेखों में नहीं किया है पर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बौद्ध-धर्म में पड़ रहे भेद पर उसकी नजर रही होगी। महावंश के उल्लेख एवं कर्न के विचारों के अनुसार अशोक से पूर्व ही बौद्ध-संघ में विभाजन की प्रवृत्ति का जन्म हो चुका था। इसी तथ्य को देखते हुए अशोक ने भिक्षुओं के अनुशासन से सम्बन्धित कदम उठाए तथा भिक्षु-भिक्षुणियों को कड़ी चेतावनी दी। उन्हें संघ से निष्कासित करने की धमकी दी गयी। स्मृतियों में भी राज्य की ओर से इस प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की गई है। भिक्षु-भिक्षुणियों को विनयभंग करने पर संघ से निष्कासित कर दिया जाता था। भिक्षुओं-भिक्षुणियों को आवास के अयोग्य स्थान पर भेजे जाने का आदेश दिया जाता था। अयोग्य-स्थानों में समाधि-स्थल, बोधिघर, स्नान-स्थल, मल-मूत्र त्याग करने के स्थानों की गणना की गई है। भिक्षु-भिक्षुणियों को चीवर वस्त्र से वंचित कर सामान्य लोगों के समान उन्हें सफेद-वस्त्र दे दिए जाते थे। इस प्रकार वे संघ से सम्बन्धित सम्मान एवं पद के आयोग्य हो जाते थे। अशोक ने संघ में अनुशासन तथा सुरक्षा के लिए महामात्रों की नियुक्ति की थी। सारनाथ से प्राप्त स्तम्भ अभिलेख से प्रतीत होता कि प्रस्तुत अभिलेख उन्हीं के लिए निर्दिष्ट है। वे अनुशासन से सम्बन्धित प्रज्ञापन लोगों के एकत्रित होने वाले स्थान-सम्भवतः चौपाल अथवा समाज- में निर्दिष्ट एवं स्थापित होना चाहिए। साथ ही उपासकों (गृहस्थों) को भी इसका पता होना चाहिए); उपवास के दिन महामात्र आकर समझाने, विश्वास प्राप्त करने एवं पालन करवाने के लिए अपने आहार-क्षेत्र (अधिकार-क्षेत्र) में उपस्थित होंगे। बौद्ध भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ शुक्ल पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा अथवा अमावस्या को उपवास करते थे। उपवास के समय वे धर्म-चर्चा करते थे। अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन जन-साधारण भी इसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित होते थे।

कन्धार से प्राप्त द्विभाषीय लघु शिला अभिलेख से ज्ञात होता है कि अशोक के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस लेख के लिखे जाने तक मनुष्यों में पाप की कमी हो चुकी थी। अशोक को देखा-देखी प्रजा ने भी जीवों की हत्या बहुत ही कम कर दी थी। मछलियों को पकड़ने का काम सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध हो गया था। लोगों ने संयम सीख लिया था। गुरुजनों एवं माता पिता के प्रीत आज्ञाकारिता तथा कर्त्तव्यपालन होने लगा था। असंयमित लोग भी संयम की राह पर आ चुके थे। रूपनाथ से प्राप्त प्रथम लघु शिला अभिलेख से प्राप्त वर्णन से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि अपने प्रयत्न से अशोक ने जम्बुद्वीय-भारत-को देवलोक सदृश बना दिया, अतः देवो एवं मानवों में अन्तर समाप्त हो गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवानां प्रिय

अशोक ने अपने लेख में स्वयं को देवानां प्रिय कहा है। इसका तात्पर्य देवताओं का प्रिय है। यह एक प्राचीन उपाधि भी है। इसे प्राचीन काल में राजाओं ने प्राय: प्रयोग किया है। प्रतीत होता है कि यह अशोक का प्रिय सम्बोधन था। वह अपने नाम के स्थान पर इसका प्रमुखता से प्रयोग करता है। विभिन्न अभिलेखों में राजाओं के नाम के साथ इसका प्रयोग देखकर भण्डारकर ने मत प्रस्तुत किया कि यह उपाधि राजाओं तक ही सीमित थी। इसके पीछे संकेत है कि राजा देवताओं द्वारा संरक्षित हैं। बी. एम. बरुआ के अनुसार देवताओं के आह्वान के साथ राजा का अभिषेक किया जाता था, अत: राजा देवताओं के कृपापात्र एवं उनसे संरक्षित होते थे। इसीलिए राजाओं को देवताओं का प्रिय कहा गया है। परन्तु साधारण लोगों के साथ भी देवताओं का प्रिय सम्बोधन प्राप्त होता है। हर्षचरित में दधीचि को देवताओं का प्रिय अभिहित किया गया है, पर वहीं उससे सम्बन्धित सम्राट् हर्ष को लिए देवताओं का प्रिय उपयोग नहीं किया गया। पतंजलि ने इसका प्रयोग साधारण वैय्याकरण के लिए किया है। अत: सम्भव है यह एक सम्मान-सूचक उपाधि थी जो मात्र राजाओं के लिए ही संरक्षित नहीं थी। कालान्तर में इसका 'मूर्ख' अर्थ हो गया। राधा कुमुद मुखर्जी, रायचौधरी इत्यादि कुछ विद्वानों का मत है कि राज्य-आश्रित बौद्ध-धर्म के प्रति अनादर की वृद्धि एवं उदासीनता के कारण अर्थ में परिवर्तन हुआ होगा।

प्रियदर्शी

अशोक ने स्वयं को देवानां प्रिय के साथ प्रियदर्शी नाम से उद्बोधन किया है। प्रियदसि का तात्पर्य प्रियदर्शी अर्थात् प्रियदर्शन से युक्त है। यह अनुराग को अभिव्यक्त करने वाला एक विशेषण है। रामायण में राम के लिए, मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए तथा पुलुमावि के नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि के लिए भी प्रियदर्शी संबोधन किया गया है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की जाती है कि अशोक का एक अन्य नाम प्रियदर्शी रहा होगा। उसने अपने अभिषेक के समय अशोक नाम धारण किया होगा। मास्की तथा गुर्जरा से प्राप्त जिन अभिलेखों में अशोक का नाम आया है वहां पर प्रियदर्शी प्रयोग नहीं किया गया है। अन्य स्थानों पर प्रियदर्शी का प्रयोग है तो अशोक नाम प्रयुक्त नहीं है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में भी अशोक के साथ प्रियदर्शी सम्बोधन उपलब्ध नहीं हैं। बुद्धघोष का मानना है कि उसका मूल नाम प्रियदर्शी था तथा अशोक दूसरा नाम था। परन्तु दीपवंश में उपलब्ध वर्णन के अनुसार अशोक प्रथम नाम था एवं प्रियदर्शी उसका बाद का नाम था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दीपवंश में वर्णन है कि महेन्द्र की आयु के चौदहवें वर्ष में अशोक का अभिषेक हुआ तथा बीसवें वर्ष में प्रियदर्शी का। बुद्धघोष तथा दीपवंश दोनों के मत परस्पर विरोधी हैं पर इतना स्पष्ट है कि अशोक का एक अन्य नाम प्रियदर्शी या अथवा प्रियदर्शी अशोक का एक विशेषण था।

धम्म-लिपि

अशोक ने अपने लेखों को धम्म-लिपि अर्थात् धर्मलेख कहा है। इन लेखों के माध्यम से उसने अपने धर्म का प्रचार किया। अशोक ने अपने चौदह शिलालेखों तथा साथ ही स्तम्भलेखो को इस धर्म के प्रचार का माध्यम बनाया आते हैं। अतः उन्हें धम्मलेख कहा है। लघु शिलालेखों को अशोक ने धम्म सावन अर्थात् धर्म श्रावण के रूप में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार प्रथक कलिंग लेख को को मात्र लिपि के नाम से अभिहित किया है। संघ भेद से सम्बन्धित अभिलेख को शासन अर्थात् शासन कहा है। शासन से तात्पर्य आज्ञा है भण्डारकर ने धर्म लिपि को धर्म शासन के रूप में माना है। एक अन्य विद्वान् जनार्दन भट्ट ने इसे धर्म-संबंधी लेख कहा है। विदेशी विद्वानों में से कर्न ने इसे Righteusness edict, ब्यूलर ने Religious edict, हुल्त्ज ने moral script, सेनार्ट ने edict के अर्थ में अपना मत प्रस्तुत, किया है। यह धम्म वास्तव में सदाचार का ही एक रुप है जिसमें बड़ो, साधुओं, श्रमणों का सम्मान करना मुख्य उद्देश्य है।

समाज

लोगों के पारस्परिक मिलने के मनोविनोद के स्थान को समाज कहा जाता था। यह आजकल के क्लब का ही एक रूप था। इनमें विभिन्न सांस्कृतिक, मनोरंजन, क्रीडाएं, जूआ इत्यादि अन्य मनोरंजन के कार्य होते थे। लोगों के इस सम्मेलन में नृत्य, संगीत, मांस-सेवन, मद्य-पान सम्मिलित कार्य था एवं इसमें विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन भी होता था। अशोक का विचार था कि ये सभी कार्य मनुष्य के व्यवहारिक विकास में बाधक हैं। इनमें समय और धन का अपव्यय होता है। अतः वह इस प्रकार के मनोरंजन से सम्बन्धित समाज के आयोजन का विरोधी था। अपने धर्म के प्रचार को ध्यान में रखते हुए अशोक ने एक प्रकार के समाज को अच्छा भी बताया है। ये शुद्ध भावना से युक्त मनोरंजन वाले समाज थे। इस प्रकार के समाज में उसने धर्म की चर्चा का प्रावधान रखा। उसका मानना था कि इससे सर्व-धर्म समभाव बढ़ता है। इससे भाव-शुद्धि होती हैं। संयम एवं दृढभक्ति में वृद्धि होती है और मनुष्य कल्याणकारी जीवन-यापन करने के लिए प्रेरित हो सकता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इससे किंचित् पाप-कर्मों का परित्याग होता है। मान्यता है कि इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा और दूर-दूर तक विशेष रुप से पश्चिमी सीमांत तक के निवासियों ने शिकार एवं मांसाहार का त्याग कर दिया। बाद के शासकों ने अशोक के इस प्रारूप को नहीं माना। अतः मनोविनोद एक नए रूप में 'उत्सव' के रूप में आरम्भ हो गया। हाथीगुम्फा अभिलेख में 'संगीत मय समाज' का उल्लेख प्राप्त होता है। ये बाद में दीपोत्सव, वसन्तोत्सव इत्यादि धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों का वर्णन प्राप्त होता है।

प्रतिवेदक

अशोक ने जन-कल्याण की अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की थी। उनके ही संदर्भ में प्रजा से अधिक से अधिक सम्पर्क करने के लिए उसने प्रतिवेदक नामक अधिकारियों की नियुक्ति की। राजा को प्रत्येक स्थिति में राज्य के कार्यों की सूचना देने का इनका कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व था। अशोक अनुभव करता था कि राज्य के सर्वांगीण विकास के लिए इस प्रकार की सूचनाएं एकत्र करना आवश्यक है। अनभिज्ञ होना राजा की प्रजा के प्रति उदासीनता को प्रकट करता है। यह उपेक्षित एवं आवश्यक जन-कल्याण के कार्यों के न होने का कारण बनता है। इस से राज्य के विकास में बाधा होती है। अशोक चाहता था कि प्रतिवेदक उसे प्रत्येक स्थिति में प्रतिवेदन करें। वह अशोक के भोजन कक्ष अथवा अन्तःपुर अथवा शयनकक्ष में होने की ओर ध्यान न देकर कार्य को अधिमान देते हुए सूचना दें। प्रतिवेदक को निर्देश था कि यात्रा पर होने अथवा उद्यान में भ्रमण करते होने पर भी वह कार्यों का प्रतिवेदन करें। अशोक द्वारा धर्ममहामात्र को दिए गए कार्य पर यदि कोई चर्चा अथवा पुनर्विचार की स्थिति आए तो प्रतिवेदक से अशोक को अविलम्ब सूचित करना अपेक्षित था।

रज्जुक

अशोक द्वारा नियुक्त किए गए उच्च-अधिकारियों में रज्जुक प्रमुख अधिकारी है। उसने चतुर्थ स्तम्भलेख में इनका वर्णन किया है। अपने अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में लिखवाये इस लेख में रज्जुक का विशेष उल्लेख है। इसकी नियुक्ति अनेक लाख लोगों पर की गई थी। रज्जुक को विशद् विशेष अधिकार प्राप्त थे। वे अभियोग लगा सकते थे तथा उन्हें दण्ड देने का अधिकार था। वे अपना कार्य आश्वस्त एवं निडर होकर कर सकें, इसके लिए वे पूर्ण-रूप से स्वतन्त्र थे। उनमें व्यवहार-समता एवं दण्ड-समता का विवेक होना आवश्यक था। उनको आदेश था कि वे प्रत्येक पाँच-पाँच वर्ष में धर्मानुशिष्टि तथा अन्य कार्यों हेतु राज्य के समस्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थानों पर दौरे पर जाएं। उनके कार्यों से लोगों को सुख-प्राप्ति होनी चाहिए थी। लोगों पर अनुग्रह करना उनसे अपेक्षित था। अशोक की इच्छा थी कि वे ऐसे प्रयत्न करें जिनसे लोगों को सुख एवं दुःख पहुंचाने वाले कार्यों का परिचय हो एवं वे लोगों का अच्छे तथा बुरे का उपदेश दे सकें। अशोक द्वारा रज्जुक नामक अधिकारियों के माध्यम से कारावास में बद्ध तथा मृत्युदण्ड प्राप्त कैदियों को छूट दिए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। अशोक का विश्वास है कि जिस प्रकार अपनी संतान को धाया के पास छोड़कर माता-पिता निश्चिन्त हो जाते हैं वैसे ही उनकी प्रजा को रज्जुकों के हाथों में सौंप कर वह निश्विंत तथा आश्वस्त है।

अशोक चाहता है कि रज्जुक व्यवहार-समता एवं दण्ड-समता का प्रदर्शन करें। जयसवाल का मत है कि रज्जुक साम्राज्य में वास्तविक प्रशासक थे। स्मिथ रज्जुकों को प्रान्तपाल मानते हैं। ब्यूलर उन्हें भूमि मापन के कार्य में संलग्न भूमि की सीमा निर्धारित करने वाले अधिकारी थे। वे युक्त को रज्जुक का विशेषण माना है तथा उसे निष्ठावान् माना है। हुल्त्ज इन्हें पुलिस अधिकारी माना है। राय चौधरी ने स्ट्रेबो द्वारा वर्णित दण्डनायकों की श्रेणी में परिगणित अधिकारी को रज्जुक माना है जो भूमि मापन करते हैं, नदियों की देखभाल करते हैं, जिनके पास शिकारगाह हैं, इन्हें पुरस्कृत करने एवं दण्ड देने की शक्ति है।

युक्त– युता अथवा युत अशोक द्वारा वर्णित साम्राज्यीय, प्रान्तीय अथवा जिले के सचिवालय से सम्बन्धित अधिकारी है। कौटिल्य ने युक्त को कोई भी अधिकारीं अर्थ दिया है जो जिला-अधिकारी हो सकते हैं; ये राजस्व वसूल करते एवं राजा के धन तथा सम्पत्ति संरक्षित करते थे। उन्हें ऐसे कार्यों में व्यय करने का अधिकार था जिससे राजस्व में वृद्धि की सम्भावना हो। टॉमस ने मानव-धर्मशास्त्र के आधार पर मत व्यक्त किया है कि नष्ट हुए धन की प्राप्ति होने पर युक्तों के संरक्षण में रखी जाए। टामस तथा भण्डाकर युक्त को कोष का अधिकारी मानने पर यह भी सम्भावना होगी कि वह राज्य के समस्त विभागों के भण्डारों राज्य की सुरक्षित निधि, जिनसे आय होती हो या न होती हो, सभी प्रकार के कोष का अधिकारी है। हुल्तज का विचार है कि यह महामात्र के कार्यालय में राजा की आज्ञाओं को विधि-बद्ध करता था। ब्यूलर ने युक्त को रज्जुक का विशेषण माना है और इस निष्ठावान अर्थ से जोड़ा है। सेनार्ट युक्त को एक विशेषण नहीं माना है, और रज्जुक इत्यादि के समान एक अधिकारी माना है। मुखर्जी युक्त का पद धर्मशास्त्र के आधार पर रज्जुक इत्यादि से नीचे माना है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में युक्त/आयुक्त को अपने भुजबल से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विजित राजाओं के विभव को वापिस देने में लगे हुए अधिकारी वर्णित किया गया है। युक्तों का सम्बन्ध गणना से जोड़कर जयसवाल का मत है कि ये गणना, अंकन, आलेखन एवं विधि-बद्ध करने वाले अधिकारी थे। इनके कार्यों पर संशय अभिव्यक्त करते हुए अर्थशास्त्र वर्णन करता है कि जिस प्रकार नदी में मछली द्वारा पिये जाते पानी का ज्ञान नहीं होता वैसे ही युक्त के कार्य-कलापों को जानना कठिन कार्य है।

धर्ममहामात्र

धर्ममहामात्र अशोक की अद्वितीय नवीन कल्पना थी। महामात्र सम्भवतः मंत्री अथवा अधिकारी होते थे। इनका कार्य जन-साधारण के सामान्य जीवन से सम्बन्धित था। अशोक ने अपने धर्म-प्रचार के संदर्भ में धर्ममहामात्र का प्रयोग किया। अशोक ने लोक-कल्याण के लिए अपने अभिषेक के तेरहवे वर्ष में इन को प्रस्तुत किया। उनकी नियुक्ति समस्त धार्मिक-सम्प्रदायों के लिए की गई थी। ये सभी जातियों के हित के लिए, सुख के लिए, कल्याणकारी कार्यों के लिए प्रव्रजित एवं गृहस्थों, आजीविकों तथा निर्ग्रन्थों के लिए नियुक्त थे। इनका प्रमुख कार्य अशोक तथा उसकी रानियों द्वारा दिए गए और अन्य राजकीय स्त्रियों द्वारा दिए गये दान के वितरण से सम्बन्धित था। अन्तःपुर के विभिन्न कार्यों का सम्पादन भी इन का उत्तरदायित्व था। वह इस प्रकार के दान के वितरण से सम्बन्धित था जिसे पाकर लोग धम्म/धर्म के प्रति गर्व अनुभव करें एवं उसका आचरण करें। धर्ममहामात्र धर्म के प्रसारण के कार्य में संलग्न थे। संघ में अनुशासन रखना एवं सुरक्षा प्रदान करना इनका अन्य मुख्य कार्य था। विनय भंग करने पर वह भिक्षु-भिक्षुणियों को दण्ड दे सकता था। उन्हें संघ से बाहर कर सकता था। वे उपवास के समय गृहस्थों के पास जाकर उनका मार्गदर्शन भी करते थे। धर्ममहामात्र को प्रदत्त किसी कार्य पर यदि किसी स्तर पर कोई पुनरीक्षा की आवश्यकता होती थी तो प्रतिवेदक इसकी सूचना तुरन्त अशोक तक पहुंचा देते थे।

स्त्र्यध्यक्षमहामात्रा (स्त्री-अध्यक्ष महामात्रा)

अशोक ने अपने धर्म के प्रचार को लक्ष्य में रखकर महामात्र नामक अधिकारी को धर्म महामात्र का रूप दिया। स्त्रियों में धर्म के प्रचार को ध्यान में रखते हुए उसने स्त्री-अध्यक्ष धर्ममहामात्रा के पद को सृजित किया। इनका कार्य क्षेत्र धर्ममहामात्र के ही समान धर्म के प्रचार एवं प्रसार पर आधारित था पर ये स्त्रियों में धर्म के प्रचार, प्रसार, उपदेश इत्यादि में संलग्न थे। कौटिल्य ने इस प्रकार के अधिकारी का वर्णन स्पष्टतः नहीं किया है। परन्तु स्त्रियों के भरण पोषण तथा असहाय स्त्रियों की सहायता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना इस अधिकारी का कार्य बताया गया है। अतः यह स्त्रियों की देखभाल करने वाली अधिकारी थी। इनके अतिरिक्त एक अन्य विशेष कार्य के लिए यह सन्नद्ध थीं जिन्हें अशोक ने ऊंचे-नीचे मंगलकार्य कहा है। ये सभी मंगलकारी कार्य अशोक की दृष्टि में उपयुक्त नहीं थे। अशोक ने समस्त कार्यों में स्त्रियों में आचरण की व्यवस्था करने के लिए स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रा की नियुक्ति की थी। अशोक ने अनुभव किया था कि लोग विभिन्न स्थितियों में यथा विवाह, पुत्र-जन्म, प्रवास इत्यादि के समय विभिन्न प्रकार के मंगल कार्य करते हैं जो अनावश्यक भी होते हैं। साथ लोग ही अनेक प्रकार की बाधाओं से मुक्ति के लिए भी इस प्रकार के कार्य करते हैं। उनकी मान्यता है कि ये सब अल्प-फल वाले कार्य होते हैं। इस प्रकार के कार्यों में स्त्रियां विशेष रुप से बढ़-चढ़कर सम्मिलित होती हैं। उन के मार्गदर्शन के लिए अशोक ने स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रा के पद की संरचना की।

अन्तमहामात्र

अशोक ने 'अंतमहामाता' अर्थात् अन्तमहामात्र नामक एक अधिकारी का उल्लेख किया है। यह अर्थशास्त्र में वर्णित 'अंतपाल' हो सकता है। यह सीमा -प्रान्तों का उच्च-अधिकारी अथवा सीमा क्षेत्र का रक्षक था। भण्डारकर के अनुसार यह अधिकारी सीमा-प्रान्तों के रक्षक न होकर पड़ोसी राज्यों में अशोक के धर्म से सम्बन्धित कार्यक्रम को क्रियान्वित करते थे। विभिन्न अन्य विवरणों के आधार पर माना जा सकता है कि वास्तव में इनका कार्य सीमाओं को रक्षा करना एवं सीमान्त जातियों के मामलों की देखभाल करना था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

14

रुद्रदाम्न का गिरिनगर शिलालेख

सिद्धम् इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगराद(पि दू)रं.... मृत्तिकोपल-विस्तारा-यामोच्छ्रय-निःसन्धि-बन्ध दृढ सर्वपालीकत्वात्पर्वत पाद प्रतिस्पर्धि सुश्लिष्ट बन्धं.......वजातेनाकृत्रिमेण सेतु- बन्धेनोपपन्नं सुप्रति विहित प्रणाली परिवाह मीढ विधानं च त्रिस्कन्धं......, नादिभिरनु-ग्रहैर्महत्युवचये वर्तते।

सिद्धि हो। गिरिनगर (आधुनिक जूनागढ़) के निकट मिट्टी और पाषाणखण्डों की चौड़ी, लम्बी और ऊँची जोड़ रहित बँधी हुई मजबूत बन्ध-पंक्तियों के कारण दृढ़ता में छोटी पहाड़ियों के साथ स्पर्धा करने वाले ठोस एवं विशाल बाँध से युक्त; समुचित रूप से बने हुए जल लाने के लिए नाली, बढ़े हुए जल को निकालने के लिए नाली और गन्दगी से बचने के उपाय से युक्त, तीन भागों में विभक्त और समुचित व्यवस्था से सम्पन्न सुदर्शन नाम की यह झील इस समय बड़ी अच्छी दशा में है।

तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीत नाम्नः स्वामि चष्टनस्य (पौत्रस्य) (राज्ञः महाक्षत्रपस्य सुगृहीतानाम्नः स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य) राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्त नाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे 70 2 (72) मार्गशीर्ष बहुलप्रति(पदयां)..... सृष्टवृष्टिना पर्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकता-पलाशिनी प्रभुतीनां नदीनामतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः सेतुम. ......

शुभ नामवाले महाक्षत्रप राजा चष्टन के पौत्र, शुभ नाम वाले स्वामि जयदाम्न के पुत्र, श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा सतत स्मरणीय नाम वाले महाक्षत्रप रुद्रदाम्न के बहत्तरवें वर्ष में मार्गशीर्ष महीने के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को घनघोर वर्षा हई, जिससे समस्त पृथ्वी मानो समुद्र के समान प्रतीत होने लगी फस्वरूप 'ऊर्जयत्' नामक पर्वत से निकलने वाली सुवर्णसिकता एवं पलाशिनी इत्यादि नदियों में भयंकर बाढ़ से बांध को........

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(क्रि)यमाणानुरूप प्रतिकारमपि गिरिशिखर तरु तट्टालकोप-तल्प द्वारशरणोच्छ्रय विध्वंसिना युग निधन सदृश परम घोर वेगेन वायुना प्रमथित सलिल विक्षिप्त जर्जरीकृताव (दीर्ण)....... क्षिप्ताश्म वृक्ष गुल्म लता प्रतानं आनदीतलादित्युद्घाटितमासीत्। चत्वारि हस्तशतानि विंशदुत्तराण्यायतेन एतावन्त्येव विस्तीर्णेन पंच सप्तति हस्तानवगाढेन भेदेन निस्सृत सर्व तोयं मरुधन्व कल्पमपिभृशं दु(र्दर्शनमासीत्)।

(उसके बाद सुदर्शन झली के बाँध को बचाने) के लिए अनुकूल उपाय किये जाने पर भी पर्वत की चोटियों, वृक्षों, तटों, अटारियों, मकानों के ऊपरी तलों, दरवाजों और बचाव के लिए बनाये गये ऊँचे-ऊँचे स्थानों को विनष्ट कर देने वाले प्रलयकालीन सम प्रचण्ड वेग वाले पवन से प्रमथित जल के विक्षेप से जर्जर किए गए तथा पत्थरों, वृक्षों, झाड़ियों और लताओं के फेंके जाने से नदी तलहटी तक उखाड़ दी गयी। वहाँ 420 हाथ लम्बी, उतने ही हाथ चौड़ी और 75 हाथ गहरी दरार पड़ जाने के कारण सारा पानी बह गया, फलस्वरूप, सुदर्शन झील देखने में रेगिस्तान के समान बहुत ही दुर्दर्शन हो गयी।

(तदिदं जनपदस्यार्थे) मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्यस्य (कृ)ते यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतं तत्कारितया च राजानुरूप कृत विधानया तस्मिन् भेदे दृष्ट्या प्रणाड्या विस्तृतसेतु......

जनपद के कल्याण के लिए मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त के प्रान्तीय शासक वैश्य पुष्यगुप्त ने (सुदर्शन नाम की इस झील का) निर्माण करवाया था, उसके बाद मौर्यवंशी राजा अशोक के लिए यवनराज तुषास्फ ने उस सुदर्शन झील को नालियों से सुशोभित कर दिया, राजोचित व्यवस्था से सम्पन्न दरार पड़ने से दिखाई पड़ने वाली, नालियों से युक्त विशाल बाँध (वाली भग्न सुदर्शन झील का रुद्रदाम्न ने पुनः जीर्णोद्धार किया।)

....णा आगर्भात्प्रभृत्यविहत समुदित राज लक्ष्मी धारणागुणतः सर्व वर्णैरभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन आ प्राणोच्छ्वासात्पुरुषवध निवृत्ति कृत सत्य प्रतिज्ञेन अन्यत्र संग्रामेष्वभिमुखागत सदृश शत्रुप्रहरण वितरणत्वाविगुण रिपु....धृत कारूण्येन स्वयमभिगत जनपद प्रणिपतितायुष शरणदेन दस्यु व्याल मृगरोगादिभिरनुपसृष्ट पूर्वनगर निगम जनपदानां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जन्म से ही अबाध रूप में प्राप्त राजलक्ष्मी के धारणात्मक गुणों के कारण उसके पास आए समस्त वर्णों के लोगों ने जिसको स्वरक्षार्थ अपना राजा बनाया था; युद्धभूमि के अतिरिक्त आजीवन मनुष्य-हिंसा न करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को जिसने चरितार्थ किया था, समरभूमि में उपस्थित समकक्ष शत्रुओं को जो अपने बाणों का लक्ष्य और दुर्बल शत्रुओं को अपनी दया का पात्र बनाता था; अपने आप उपस्थित अवनत जनसमूह को जो दीर्घ जीवन और अभयदान देता था; चोर-डाकू, हिंसकजन्तु, जंगली जानवर और नानाविधरोग आदि से सर्वदा अनाक्रान्त रहने वाले जनसमुदाय से रहित 'स्थानीय नगर निगम प्रभृति संस्थाओं' से सम्पन्न नगरों वाले,

स्व-वीर्यार्जितानामनुरक्त सर्व प्रकृतीनां पूर्वापराकरावन्त्यनूप नीवृदानर्त सुराष्ट्र श्वभ्र मरू कच्छ सिन्धु सौवीर कुकुरापकरान्त निषादादीनां समग्राणां तत्प्रभावाद्य.......... (यथावत्प्राप्तधर्मा)र्थ काम विषयाणां पतिना सर्व क्षत्राविष्कृतवीर शब्द जातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथपतेः सातकर्णेर्द्विरपि निर्व्याजमवजित्यावजित्य सम्बन्धविदुरतया अनुत्सादनात्प्राप्तयशसा वा...।

अपने पराक्रम से अर्जित और समस्त प्रजा के प्रति निष्ठवान्, पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों, अवन्ती, अनूप, नीवृद, आनर्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, मरू, कच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद आदि समस्त प्रभाव से...उसी प्रकार से अर्थ, काम विषयों को प्राप्त, सभी क्षत्रियों में प्रख्यात "वीर" शब्द से युक्त होकर, अपने राजत्व के अभिमान से (स्वतन्त्र होकर रहने वाले) यौधेय नामक क्षत्रियों को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने वाले, दक्षिणी भारत के राजा सातकर्णी को दो बार बिना विशेष प्रयत्न के जीत-जीत कर निकट सम्बन्ध के कारण मुक्त कर देने से प्राप्त कीर्ति वाले.....

(प्रा)प्तविजयेन भ्रष्ट राज प्रतिष्ठापकेन यथार्थ हस्तोच्छ्रयार्जितोर्जित-धर्मानुरागेण शब्दार्थ गान्धर्व न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण धारण विज्ञान प्रयोगावाप्त विपुल कीर्तिना तुरग गज रथ चर्यासि चर्म नियुद्धाद्य...ति पर बल लाघव सौष्ठव क्रियेण अहरहर्दान मानानवमान शीलेन स्थूल लक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलि शुल्क भागैः कनक रजत वज्र वैडूर्य रत्नोपचय विष्यन्दमानकोशेन

सर्वदा सर्वत्र विजय को ही प्राप्त करने वाले, राज्य से भ्रष्ट राजाओं को फिर से प्रतिष्ठित करने वाले, न्याय से हाथ उठा-उठाकर यथार्थ निर्णय देने वाले, धर्म के प्रति अनुराग का उपार्जन करने वाले, व्याकरण, राजनीति, संगीत एवं तर्क आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विस्तृत एवं गूढ़ शास्त्रों के अध्ययन, स्मरण, अनुभूति और व्यवहार से जिसने प्रभूत यश को प्राप्त करने वाले; घोड़े, हाथी और रथ के चलाने में तथा ढाल और तलवार के युद्ध में निपुण....शत्रु पर शाक्ति का लाघव दिखाने वाले, दिन-रात दान और मान के विषय में सर्वथा घमंड-रहित भाव युक्त, स्थूल लक्षणों से समुचित रूप से प्राप्त मालगुजारी और चुंगी के कारण सोने, चाँदी, हीरे, वैडूर्य मणि और रत्नों के ढेर भरपूर खजाने वाले,

स्फुट लघु मधुर चित्र कान्त शब्द समयोदारालंकृत गद्य पद्य काव्य-विधान-प्रवीणेन प्रमाण मानोन्मान स्वर गति वर्ण सार सत्त्वादिभिः परम लक्षण व्यञ्जनैरूपेतकान्त मूर्त्तिना स्वयमधिगत महाक्षत्रप नाम्ना नरेन्द्र कन्या स्वयंवरानेक माल्य प्राप्त दाम्ना

स्फुट, लघु, मधुर, सुन्दर कान्त प्रभृति शब्द प्रयोग से प्रशस्त और अलंकारों से युक्त गद्यपद्यात्मक काव्य-रचना में निपुण, बौद्धिक गुणों से यथोचित चौड़ाई, लम्बाई, ऊँचाई, स्वर, गति, शरीर के रंग, बल, सत्त्व आदि शारीरिक गुणों से युक्त तथा (चक्रवर्तित्व आदि के द्योतक शंकचक्र आदि के) परम चिह्नों से युक्त, सुन्दर आकृति वाले, वीरतापूर्ण कार्यों से स्वयं "महाक्षत्रप" उपाधि को धारण करने वाले, स्वयंवरों में अनेक राजकुमारियों से जयमालाओं को प्राप्त करने वाले....

महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गो ब्राह्मण...हितार्थं धर्म कीर्ति वृद्ध्यर्थ च अपीडयित्वा कर विष्टि प्रणय क्रियाभिः पौर जानपदं जनं स्वस्मात्कोशान्महता धनौघेनान अनातिमहता च कालेन त्रिगुण दृढ तर विस्तारायामं सेतुं विधाय सर्वतटे....(सु)दर्शनतरं कारितमिति।

(गुणों से अलंकृत) महाक्षत्रप रुददाम्न ने हज़ारों वर्ष तक के लिए गाय और ब्राह्मणों के.....लिए, धर्म और यश की वृद्धि के लिए, प्रजाजनों से प्यार से कर एवं भेंट से अपने राज कोश की अपार धन-राशि के असीमित व्यय से, थोड़े ही समय में पहले की अपेक्षा तिगुने सुदृढ़ लम्बे और चौड़े बाँध बँधवा कर उस सुदर्शन को समस्त तटों पर और अधिक सुन्दर बनवा दिया।

अस्मिन्नर्थे महाक्षत्रपस्य मति सचिव कर्म सचिवैरमात्य गुण समुद्युक्तैरप्यति-महत्त्वाद्भेदस्यानुत्साह विमुख मतिभिः प्रत्याख्यातारम्भं पुनः सेतु बन्ध नैराश्याद्धाहा भूतासु प्रजासु इहाधिष्ठाने पौरजानपद जनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त सुराष्ट्राणां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवेन कुलैप पुत्रेणामात्येन सुविशाखेन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस विषय में महाक्षत्रप रुद्रदाम्न के सचिवोचित समस्त गुणों से युक्त मतिसचिव और कर्मसचिवों ने झील के दरार की विशालता को देखकर, भग्न सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार कार्य के प्रति अपनी उत्साह-हीनता युक्त असहमति प्रकट करने पर, बाँध के फिर से बँध जाने की आशा टूटने से, प्रजा के निराश होकर त्राहि-त्राहि करने पर, अपने शासन में प्रजा के हित को ध्यान में रखकर राजा रुद्रदाम्न ने समस्त आनर्त और सुराष्ट्र प्रदेश के राज्यपाल के रूप में पह्लव कुलैप के पुत्र अमात्य सुविशाख को नियुक्त करके

यथावदर्थ धर्म व्यवहार दर्शनैरनुराग मभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेना-विस्मितेनार्येणाहार्येण स्वधितिष्ठता धर्म कीर्ति यशांसि भर्तुरभिवर्द्धयता-नुष्ठितमिति।

धर्म-अर्थ और व्यवहार के समुचित निरीक्षण से प्रजा में अनुराग को बढ़ाने वाले, शक्तिशाली, संयमी, स्थिर, निरभिमानी, आर्योजित गुणों से सम्पन्न और अपने कर्तव्य करने में दृढ़ अमात्य सुविशाख ने एक सफल शासक के रूप में अपने स्वामी के धर्म,कीर्ति और यश को बढ़ाने के लिए सुदर्शन झील को तैयार कर दिया।

रूद्रदामन का अभिलेख

रुद्रदामन का गिरिनगर का शिलालेख जूनागढ़ के निकट पहाड़ी की एक शिला पर उत्कीर्ण है इस शिला पर मौर्य सम्राट् अशोक तथा गुप्त-नरेश स्कन्दगुप्त द्वारा लिखवाए गए लेख उत्कीर्ण हैं। ये सभी पानी के प्लवन पर नियन्त्रण के लिए लिखवाये गए हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रान्तीय शासक पुष्यगुप्त द्वारा गिरिनगर में सुदर्शन नामक झील बनवायी गयी थी। अशोक के गिरिनगर में प्रतिनिधि-शासक तुषास्फ ने इसमें प्रणाली इत्यादि की व्यवस्था की। रुद्रदामन के शासन-काल में ऊर्जयत् पर्वत से निकलने वाली सुवर्णसिकता, पलाशिनी आदि नदियों में भयंकर बाढ़ आयी। इससे सुदर्शन झील के बांध में दरार आ गयी। इसका जीर्णोद्धार रुद्रदामन ने कराया था। गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त द्वारा भी बाँध की मरम्मत करवायी गई। इस का उल्लेख यहाँ पर वर्णित है। इस प्रकार यह शिला जल संचयन एवं उससे सम्बन्धित समस्याओं तथा उनके उपचारों का लगभग 800 वर्षों का लम्बा इतिहास अपने में समाये हुए हैं।

रुद्रदामन का प्रस्तुत अभिलेख ओज गुणयुक्त समास बहुला शैली के गद्य में लिखित है। वर्ण्य-विषय के अनुसार इसमें गौडी रीति का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। सरल एवं प्रवाह-युक्त भाषा में लिखित इस अभिलेख में समस्त पद रूप में कुल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छह वाक्य हैं। इनमें से पांचवा वाक्य सबसे लम्बा है। यहां पर अर्थालंकार का कम ही प्रयोग हुआ है। इस अभिलेख में यमक तथा अनुप्रास शब्दालंकार एवं उपमा, उत्प्रेक्षा तथा श्लेष अर्थालंकारों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं। ये अभिलेखों का संस्कृत में होना रुद्रदामन के संस्कृत प्रति अनुराग को प्रदर्शित करता है जबकि उसके समय में प्राकृत में लेख प्राप्त होते हैं। मुख्य से संस्कृत भाषा में लिखित प्रस्तुत रचना में प्राकृत शब्दों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। भाषा में सरलता पायी जाती है। भाषा साधारण बोलचाल की है तथा अन्त तक प्रवाह से युक्त है। स्थान-स्थान पर वर्णन में मनोरमता दृष्टिगोचर होती है। उपलब्ध वर्णन के अनुसार रुद्रदामन स्वयं भी काव्य-शास्त्र में प्रवीण उल्लिखित है। वह व्याकरण, अर्थशास्त्र, संगीत, न्याय इत्यादि विद्याओं के पारण, धारण, ज्ञान तथा प्रयोग से कीर्तियुक्त है। उसे वैदर्भी रीति के विभिन्न गुणों से युक्त एवं गद्य-पद्य की रचना में निपुण है। यह तथ्य संकेत करता है कि द्वितीय शताब्दी ई० में काव्य-शास्त्र का विपुल प्रचार था। गद्य-पद्य लेखन कवियों के लिए अपरिचित नहीं था। साथ ही यह संकेत भी प्राप्त होता है कि राजा मात्र वीर ही नहीं होते वे पढ़ाई-लिखाई में भी प्रवीण होते थे।

प्रस्तुत अभिलेख से रुद्रदामन की वंश-परम्परा प्राप्त होती है। वह चष्टन का पौत्र एवं जयदामन का पुत्र था। जयदामन के साथ क्षत्रप तथा चष्टन एवं रुद्रदामन के साथ महाक्षत्रप की उपाधि की उपलब्धि उनकी शक्ति तथा स्थिति को प्रदर्शित करते हैं। प्राचीन प्रचलित ईरानी परम्परा कें अनुसार भारतीय शक शासक स्थिति के अनुसार इन पदवियों को धारण करते थे। राजा स्वयं महाक्षप पदवी धारण करता था। युवराज क्षत्रप की उपाधि से युक्त होता था। जब महाक्षत्रप चष्टन नरेश था तब जयदामन युवराज था। सम्भवतः जयदामन की अपने पिता के राज्यकाल में ही किसी युद्ध में मृत्यु हो गयी थी। वह महाक्षत्रप नहीं बन सका। अतः उसके लिए केवल क्षत्रप की ही उपाधि प्राप्त होती है। फलस्वरूप अपने दादा चष्टन के पश्चात् रूद्रदामन शासक बना और उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। ये कुषाणों के आधिपत्य से अलग होकर स्वतन्त्र नरेश बने थे। सम्भवतः रुद्रदामन के समय तक कुषाणों की शक्ति का दक्षिण में ह्रास हो गया था। वह हाथी, घोड़े, रथ आदि पर संचालन में निपुण था तथा तलवार एवं प्रयोग में विशेषरूप से रुद्रदामन ने अनेक प्रान्तों को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। साथ ही उसने राज्य से भ्रष्ट राजाओं को पुनः प्रतिष्ठित भी किया। यह प्रवृति बाद में समुद्रगुप्त (प्रयाग स्तम्भ-लेख) में भी उल्लिखित है। सम्भवतः क्षमा-भाव एवं सदाचार-वश यह प्रवृत्ति राजाओं में थी। वीरता दिखाते हुए रुद्रदामन ने किसी के भी वश में न आने वाले यौधेयों को नष्ट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर दिया। वे यौधेय दक्षिणी पंजाब क्षेत्र में सतलुज के किनारे के क्षेत्र से हरियाणा, उत्तरी राजस्थान क्षेत्र तक बसे हुए थे। उसने दक्षिण के राजा को बार-बार पराजित किया। परन्तु निकट सम्बन्धी होने के कारण उसको नष्ट नहीं किया। अभिलेख में उन सभी राज्यों के नाम दिये गए हैं जिन्हें रुद्रदामन ने जीता था। सम्भवतः जिन सिन्धु, सौवीर इत्यादि क्षेत्रों का उल्लेख करता है कि वहां कुषाणों से रुद्रदामन का युद्ध हुआ। मरुक्षेत्र में यौधेयों से युद्ध होने की सम्भावना हैं।

रूद्रदामन वीर होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट प्रशासक भी था। उसका राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। वहां पर उसके राज्यपाल प्रान्तीय शासक के रूप में व्यवस्था का संचालन करते थे। उसने संदर्भवश समस्त आनर्त तथा सुराष्ट्र के प्रकाशक पह्लव जातीय कुलैप के पुत्र सुविशाख को नियुक्त करने का उल्लेख किया है। शासन-व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए उसने कार्यकारी पार्षदों-मतिसचिव, कर्मसचिव इत्यादि की नियुक्ति की थी। वह विभिन्न प्रकार के बलि, शुल्क इत्यादि कर प्रजा से ग्रहण कराता था। उसका खजाना चाँदी, रत्न आदि से भरे रहते थे। व्यवहार-कुशल रूद्रदामन ने प्रतिज्ञा की हुई थी कि वह युद्ध के अतिरिक्त नर-हत्या नहीं करेगा। वह धर्मपूर्वक न्याय की घोषणा अपना दायां हाथ उठाकर करता था। उसके जन-कल्याण की भावना का वर्तमान अभिलेख की मुख्य विषय-वस्तु सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार से ज्ञान होता है। अतिवृष्टि के कारण सुवर्णसिकता आदि नदियों में आयी बाढ़ के कारण सुदर्शन झील का बांध टूट गया। उसमें चार बीस हाथ लम्बी और इतनी चौड़ी तथा पिचहत्तर हाथ गहरी दरार पड़ गयी। दरार के करण हुए विनाश को देखकर रूद्रदामन विचलित नहीं हुआ। सम्पूर्ण आनर्त सुराष्ट्र की प्रजा के हित के लिए वह बांध बंधवाने के लिए तत्पर हो गया। इस कार्य के लिए उसने कल्याण भावना से कोई अतिरिक्त कर (सरचार्ज), बेगार, उपहार इत्यादि नहीं लिए। उसने मजबूती देने के लिए बांध को तिगुनी दृढ़ता तथा विस्तार से तैयार करवा दिया।

रूद्रदामन के पश्चात् शकों का विरोध करने वाले वे समस्त राजा उठ खड़े हुए जिन्हें रूद्रदामन ने जीतकर जीवित ही छोड़ दिया था। साथ में कुषाण भी अपनी खोई राज्यलक्ष्मी पाने के लिए उठ खड़े हुए। शकों तथा कुषाणों में सत्ता के संघर्ष में गुप्त-साम्राज्य का उदय हुआ। ऐसा ही संघर्ष समुद्रगुप्त के पश्चात् भी हुआ। तब उसके द्वारा जीवित छोड़े गए नरेश समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के विरूद्ध उठ खड़े हुए थे। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने शक एवं कुषाणों के साथ गुप्त-साम्राज्य की प्रतिद्वन्द्विता के संघर्ष का सम्पूर्ण विनाश कर दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

15

समुद्रगुप्त का एरण स्तम्भ अभिलेख

......................सुवर्ण-दाने
(न्यक्का)रिता नृपतयः पृथुराघवाद्याः ।। 2 ।।
(भूपो) बभूव धनदान्तक तुष्टि कोप तुल्यः
(पराक्क्र)म नयेन समुद्रगुप्तः ।
(यं प्रा)प्य पार्त्थिव गणस्सकलः पृथिव्याम्
(पर्य्य)स्त राज्य विभवद्धृतमास्थितो(ऽ)भूत् ।। 3 ।।
(ताते)न भक्ति नय विक्कम तोषिन
(यो) राज शब्द विभवैरभिषेचनाद्यैः ।
(सम्मा)नितः परम तुष्टि पुरस्कृतेन
(सोऽयं ध्रु)वो नृपैरप्रतिवार्य्य वीर्य्यः ।। 4 ।।
(श्रीर)स्य पौरूष प्राक्क्रम दत्त शुल्का
(हस्त्य)श्व रत्न धन धान्य समृद्धि युक्ता ।
(नित्य)ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-
(सं)ङ्क्रामिणी कुलवधु व्रतिनी निवष्टा ।। 5 ।।
(यस्यो)र्ज्जितं समर कर्म्म पराक्क्रमेद्धं
(शुभ्रं) यशः सुविपुलम्परिबम्भ्रमीति ।
(कर्म्मा)णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि
(स्व)प्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति ।। 6 ।।
.......(प्तः) स्व भोग नगरैरिकिण प्रदेशे ।
.......(सं)स्थापितस्स्व यशसः परिबृङ्हनार्त्थम् ।। 7 ।।
.... वो नृपतिराह यदा ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिन्दी अनुवाद

.............सुवर्ण दान में पृथु तथा रघुकुल में उत्पन्न राजाओं को भी जिसके द्वारा तिरस्कृत कर दिए गए।।1।।

ऐसा (समुद्रगुप्त) कृपा करने में कुबेर तथा क्रोध करने में यमराज के समान हुआ।।2।।

.... (अपने पराक्रम) तथा राजनय से युक्त समुद्रगुप्त है। (युद्ध भूमि में जिसे अपने सम्मुख पाकर) सम्पूर्ण पृथ्वी पर समस्त नृपगण अपने राज्य वैभव से वञ्चित होकर, उन्मूलित कर दिए ।।3।।

जिसकी भक्ति, नीति तथा पराक्रम से सन्तुष्ट होकर एवं अत्यन्त हर्षित होकर उसके पिता के द्वारा 'राज' शब्द रूपी तथा राज्याभिषेकादि सम्मानों से जो सम्मानित किया गया। यह निश्चय से यह वही नरेश है जिसके पराक्रम का सामना अन्य राजा नहीं कर सके।।4।।

अपने पौरूष तथा पराक्रम रूपी शुक्ल देकर राज्यश्री अनेक हाथी, घोड़े, रत्नादि धनों तथा धन्यादि समृद्धियों से युक्त थी। सदैव राजगृह में अनेक पुत्र-पौत्रादि रहने वाली, नियमों का पालन करने वाली उस की कुलवधु वर्तमान है।।5।।

युद्ध ओर कार्य में वीरता प्रदर्शित करने के पराक्रम से शुभ तथा विपुल यश चारों व्याप्त हो रहा है। रणभूमि मे प्रदर्शित वीरतापूर्ण कर्मों को जिसके शत्रु स्वप्नों में भी स्मरण करके आज भी भयभीत रहते है।।6 ।।

अपने भोगनगर एरिकिण प्रदेश में अपने यश की अभिवृद्धि के लिए उसने इस (विजय) स्तम्भ का उसने निर्माण करवाया।।7।।

महाराज ने कहा जब................

समुद्रगुप्त का एरण स्तम्भ लेख

भारत के इतिहास में एरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ से अनेक अभिलेखों का प्राप्त होना इसके महत्त्वपूर्ण होने का सूचक है। भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस स्थान के एक ओर मालवा तथा दूसरी ओर बुन्देलखण्ड का क्षेत्र है। उज्जयिनी से विदिशा तक जाने वाला राजमार्ग इसे दशार्ण, कौशाम्बी और काशी के साथ जोड़ता है। दशार्ण इसको चेदि जनपद से जोड़ने में सहायक बनता है। एरिकिण अर्थात् एरण इन सब स्थानों का केन्द्र बनता है। अतः विभिन्न नरेशों ने उत्तर एवं दक्षिणी क्षेत्रों पर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नियन्त्रण रखने के लिए एरण को छावनी के रूप में प्रयोग किया होगा। मध्य प्रदेश के सागर जिले में स्थित इस स्थान से प्राप्त समुद्रगुप्त का अभिलेख इसी दृष्टि से इसको महत्त्वपूर्ण बनाता है।

एरण से प्राप्त समुद्रगुप्त का स्तम्भ-लेख अपनी विषय वस्तु के आधार पर उसकी प्रयाग-प्रशस्ति का उत्तरार्ध माना जा सकता है। वसन्ततिलका छंद में लिखित समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति उसके प्रारम्भिक जीवन की उपलब्धियों की गणना करती है। जबकि एरण से प्राप्त अभिलेख उसके जीवन के उत्तरार्ध के शांत जीवन पर प्रकाश डालता है। इस अभिलेख में आठ (8) पद्यों के होने की सम्भावना है। इस अभिलेख की आरम्भिक सात पंक्तियाँ नष्ट हो गयी हैं। इस कारण इसका प्रथम पद्य पूर्णरूप से नष्ट हो गया है। दूसरे पद्य का भी मात्र अन्तिम पद ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो अन्तिम चार पंक्तियां खण्डित हैं वे दो पद्यों के होने का संकेत करती हैं।

उपलब्ध वर्णन के प्रारम्भ में समुद्रगुप्त को दानशील बताया गया है। उसे पृथु, रघु इत्यादि वंशों के नरेशों से भी बढ़कर अधिक मात्रा के सुवर्ण का दानी वर्णित किया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में भी उसके द्वारा दान किए जाने का वर्णन 'गोशतसहस्रप्रदायी' कुमारगुप्त के बिल्सद लेख में 'गो-हिरण्य कोटि प्रदस्य' कह कर किया गया है। गुप्तवंशी नरेश ज्ञान, दान तथा शक्ति के क्षेत्र में कभी क्षीण नहीं रहे। बाद में चन्द्रगुप्त (द्वितीय), कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त इत्यादि भी इस सामर्थ्य से युक्त वर्णित हैं। सभी गुप्त नरेश ज्ञान के क्षेत्र में पांरगत थे। 'शैशवे अभ्यस्त विद्यानां' के अनुसार बाल्यकाल में उन्होने समीचीन रूप से अध्ययन किया। इसीलिए समुद्रगुप्त को 'स्फुट-बहु-कविता-कीर्त्ति...' तथा अनेक काव्य विक्रयाभिः प्रतिष्ठित कविराजः प्रयाग प्रशस्ति में वर्णत किया गया है। मान्यता है कि ज्ञान और शक्ति एक साथ नहीं होते परन्तु 'सत्काव्य-श्री-विरोधान्...' शब्दों से संकेत ग्रहण होता है कि कम से कम समुद्रगुप्त के पास दोनों ही एक साथ विद्यमान थे। समुद्रगुप्त के विषय में उल्लिखित है कि उसने पिता से भक्त के रूप में अपनत्व प्राप्त करके सज्जनता का प्रदर्शन करके नीति पूर्वक कार्य करने से, पराक्रम के प्रदर्शन से उनको प्रसन्न करके राज्य प्राप्त किया था। प्रयाग प्रशस्ति में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि समुद्रगुप्त ने अपने भाइयों तथा अन्य 'तुल्यकुलज' उम्मीदवारों को परास्त करके अपने पिता से राज्य प्राप्त किया था। जूनागढ़ शिलालेख में स्कन्दगुप्त के विषय मे भी इसी प्रकार का उल्लेख "व्यपेत्य सर्वान्मनुजेन्द्रल्लक्ष्मी स्वयं यं वरयां चकार" प्रदर्शित करता है कि गुप्त-नरेश अपनी शक्ति और लाघव से राज्य-शासन प्राप्त करते थे। शक्ति में कोई भी नरेश

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समुद्रगुप्त के सामने टिक नहीं सका। सम्भवतः अपने को अपने समव्यस्कों से प्रतिस्पर्द्धा में राज्य-प्राप्ति के लिए वह गौरवान्वित अनुभव करता रहा परन्तु अपने विजय-अभियान के सन्दर्भ में वह घमण्ड करता दिखाई नहीं देता। उसने सुदूर दक्षिणी के शासकों को जीत कर भी उनके राज्य वापिस लौटा दिए, समस्त आटविक राज्यों के परिचारक बना लिया। अनके राजाओं को 'कर दायी के रूप में अधीन बनाकर', उसके आगे 'विनम्र हुए नरेशों एवं राजवंशो को जीत कर पुनः प्रतिष्ठापित' कर दिया। आत्मनिवेदन करने वाले तथा कन्या-दान जैसे कूटनीति के उपायों से अभय-दान दे दिया था। ये समस्त उपाय उसकी विनम्रता को प्रदर्शित करते हैं। इनसे उसकी लोकप्रियता बढ़ी अवश्य परन्तु इसका फल उसके पुत्रों को भुगतना पड़ा। (जिसका वर्णन चन्द्र के मेहरौली लोह स्तम्भ लेख में देखा जा सकता है)

धर्मशास्त्र के वर्णन के अनुसार राजा में सभी देवताओं के अंश विद्यमान होते है। फलस्वरूप वे कुबेर तथा यम के अंश भी धारण करते हैं। वे स्वाभाविक रूप से प्रसन्न होने पर कुबेर तथा कुपित होने पर यम का रूप धारण कर लेते हैं। जो शासक कर-दान, आज्ञा-पालन, पास आकर प्रणाम मुद्रा में विनम्रता दिखाते हैं, कन्या-दान जैसे राजनैतिक उपायों इत्यादि प्रसंग में समुद्रगुप्त के सम्पर्क में आए उन पर वह प्रसन्न हुआ और उन पर अनुग्रह कर रहा है। शत्रु नरेशों को उसने नष्ट कर दिया। युद्ध में जीते गए पर जीवित छोड़े गए नरेश उसकी वीरता को स्मरण करके स्वप्न में भी भयभीत हो जाते थे। जो भी अपने राज्य के शासक बने रहना चाहते थे वे समुद्रगुप्त की शरण मे आकर ही राजा बने रह सकते थे। इस प्रकार उसने अपना राज्य निष्कंटक कर लिया। वह स्मृद्धि से युक्त था इसके लिए उसने शुल्क के रूप में अपना बल एवं पराक्रम दिया। पांचवां पद्य इस तथ्य को पोषक है। तदर्थ पांचवे पद्य के प्रारम्भ में 'श्री' शब्द को समृद्धि सूचक अर्थ में ग्रहण किया है। कुछ विद्वान 'श्री' के स्थान पर 'दत्ता' शब्द की कल्पना करते हैं। इस प्रकार यह अर्थ दिया है कि हाथी, घोड़े, रत्न, धन-धान्य सहित 'दत्ता' अर्थात् दत्त देवी को समुद्रगुप्त ने अपने बल एवं पराक्रम से पत्नी के रूप में प्राप्त किया था।

पांचवे पद्य के अन्तिम दो पादों से आगे समुद्रगुप्त के जीवन का उत्तरार्ध दिखाया गया है। उसका राज्य उसके पराक्रम, बल एवं नीति के प्रयोग से शान्त एवं व्यवस्थित हो चुका है। उसके आंगन में प्रसन्नता का वातावरण है। उसके परिवार में अनेक पुत्र एवं पौत्र हैं। उसके पास राजकीय, परिवारिक एंव सामाजिक गुणों व्यवस्थायों तथा संस्कारों से युक्त कुल-वधू है। कुल-वधू के लिए प्रस्तुत वर्णन में एक वचन के प्रयोग से प्रतीत होता है कि यह कुलवधू उसकी एकमात्र पत्नी है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

16

चन्द्र का मेहरौली लोह-स्तम्भ अभिलेख

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्
वङ्गेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः।।1।।

एक साथ मिलकर आक्रमण करने के लिए आऐ हुए शत्रुओं को, समरभूमि में वक्षस्थल के बल पर बंगाल प्रदेश में पीछे ढकेलते हुए जिस (चन्द्र) की भुजा पर तरवार से यश लिखा गया, जिसने सिन्धु नदी की सात धाराओं को पार कर वाह्लिक देश को जीता और जिसकी शक्ति रूपी पवन से दक्षिणी-समुद्र आज भी सुगन्धित हो रहा है।।1।।

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्मजितावनीं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महा-
न्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशित रिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम्।।2।।

(पृथ्वी के भार को वहन करने से) थके हुए के समान मानो इस धरती को छोड़कर दूसरे लोक अर्थात् स्वर्ग का आश्रय लिया है, पार्थिव शरीर से अग्नि के मुख से स्वर्ग को जाकर भी अपने यश-रूपी शरीर से पृथ्वी पर निवास करता है। विशाल कानन की शान्त हुई दावाग्नि के समान शत्रुओं को विनष्ट करने वाले उस (चन्द्र) के प्रयत्नों का स्मारकरूप महान् प्रताप आज भी इस भूमण्डल को नहीं छोड़ता है।।2।।

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेनायं प्रणिधाय भूमि पतिना भावेन विष्णो मतिं
प्रान्शुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।।3।।

जिसने पूर्वजों से प्राप्त क्रिए और अपने भुजबल से उपार्जित राज्य के एकाधिपत्य का बहुत दिनों तक उपभोग करने वाले, चन्द्र नामक पूर्णचन्द्र के समान मुख-शोभा को धारण करने वाले ने भगवान् विष्णु में श्रद्धा रखकर "विष्णुपद" नाम के ऊँचे पर्वत पर भगवान् विष्णु की ध्वजा की स्थापना की।।3।।

चन्द्र का व्यक्तित्व

गुप्त-साम्राज्य के उत्थान के समय चन्द्रगुप्त (द्वितीय का) समकालीन शक-कुषाणों से प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ा। पहले से स्थापित राजशाही के साथ नव-स्थापित राजशाही से संघर्ष चला। श्रीगुप्त तथा घटोत्कच प्रारम्भिक गुप्त नरेश पूर्ण रूपेण विस्तृत राज्य की शक्ति से सम्पन्न नहीं थे। चन्द्रगुप्त (प्रथम) के आने के साथ साम्राज्य के गठन में आनी प्रारम्भ हुई। समुद्रगुप्त ने अपने पूर्व-वर्ती गुप्त नरेशों की स्थिति से बढ़कर वीरता प्रदर्शित करते हुए राज्य सुदृढ करने का प्रयास किया। समुद्रगुप्त ने इस प्रकार की नीति अपनायी जिससे निकटवर्ती राज्यों को उसने नष्ट कर दिया, आटविक प्रमुखों को उसने मित्र बना लिया, सुदूर दक्षिण के राज्यों को जीत कर मुक्त कर दिया (क्योंकि दक्षिण में सदा के लिए पूर्ण नियन्त्रण सम्भव नहीं था), विनम्र नरेशों से प्रसन्न होकर, विभिन्न प्रकार के राजनैतिक उपायों यथा कन्या दान इत्यादि से अपने क्षेत्रों में राज्य चलाने की आज्ञा देकर उसने कृतार्थ किया। समुद्रगुप्त के जीवन-काल में वे शान्त रहे। परन्तु पराजय के अपमान को वे अन्तःकरण में दबाए तथा छिपाए रहे। एरण से प्राप्त समुद्रगुप्त के लेख में उसके इस शान्त जीवन की झलक दिखाई देती है। समुद्रगुप्त के दिवंगत होते ही सभी परास्त राजा अपने अपमान का बदला लेने के लिए उठ खड़े हुए। उन्होंने गुप्त साम्राज्य के प्रति विद्रोह कर दिया एवं आक्रमण कर दिया। पुनः प्राप्ति के लिए उद्यम कर दिया। इस आकस्मिक परिवर्तन का समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी रामगुप्त सामना नहीं कर सका। उसने सम्भवतः इस प्रकार की प्रतिक्रिया की कल्पना भी नहीं की होगी। इसके लिए उसने प्रतिरोध तो किया पर शकों से घिर गया। अपने जीवन तथा प्रजा के जीवन की सुरक्षा के लिए उसे शकराज को अपनी पत्नी सौंप देने जैसी अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। यह उसकी दुर्बलता मानी गयी। रामगुप्त के अनुज चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने अपनी भाभी ध्रुवदेवी को शत्रुओं से बचानया। अपने अपमान के कारण रामगुप्त पलायन कर गया। अथवा उसके अनुज ने भी उसे परास्त करके मार दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फलस्वरूप उसे राज्य प्राप्त हुआ तथा उसने उस राज–महिषी ध्रुवदेवी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया।

इस घटना क्रम में जो संघर्ष चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने किया उसका उल्लेख मेहरौली से प्राप्त लौह–स्तम्भ लेख से प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों ने इस लेख में राजा का नाम स्पष्ट न होने के कारण इसका सम्बन्ध विभिन्न नरेशों के साथ किया है। आर०जी० वासक तथा अयंगर प्रस्तुत अभिलेख में वर्णित चन्द्र को चन्द्रगुप्त प्रथम मानते हैं। उनका तर्क है कि समुद्रगुप्त ने अपनी प्रयाग प्रशस्ति में कहीं भी बंगाल का नाम प्रस्तुत नहीं किया है। उस क्षेत्र को चन्द्रगुप्त प्रथम (मेहरौली अभिलेख में पहले ही जीत चुका था अतः समुद्रगुप्त को उसे विजित करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। फ्लीट ने इस अभिलेख की लिपि समुद्रगुप्त से पूर्ववर्ती मानते हुए 'चन्द्र' को चन्द्रगुप्त प्रथम माना है। राखलदास बैनर्जी तथा हरप्रसाद शास्त्री 'चन्द्र' को बंगाल के सुसूनिया शिलालेख का चन्द्रवर्मन् मानते हैं। पर विद्वानों ने इस चन्द्रवर्मन को प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित चन्द्रवर्मन है जिसे समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। स्मिथ, दाण्डकर, हार्नले, मुखर्जी, अल्तेकर, जयसवाल, दिनेशचन्द्र सरकार इत्यादि विभिन्न तर्कों के आधार पर चन्द्र को चन्द्रगुप्त द्वितीय मानते हैं। एच० सी० सेठ एवं बी० प्रसाद ने तो चन्द्र को चन्द्रगुप्त मौर्य माना है। मजुमदार इसे कनिष्क के रूप में वर्णित करते हैं। श्री राम गोयल ने चन्द्र को समुद्रगुप्त माना है। परन्तु घटनाक्रम को देखते हुए तथा प्रयुक्त लिपि के प्रकार के कारण इस अभिलेख को चन्द्रगुप्त (द्वितीय) से ही संबंधित माना है। उदयगिरि गुहा लेख से भी ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने एक दिग्विजय अभियान किया था। वह एक विस्तृत साम्राज्य का अधिपति था। वह विष्णु–भक्त था। ये तीनों तथ्य मेहरौली लेख में भी अभिव्यक्त हैं। अतः चन्द्र का मेहरौली लौह–स्तम्भ अभिलेख किसी अन्य चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित न हो कर चन्द्रगुप्त (द्वितीय) से सम्बन्धित ही है। प्रस्तुत अभिलेख तीन पद्यों में लिखित है। शार्दूलविक्रीडित छंद में लिखित इस लेख के लेखक के नाम का उल्लेख नही हैं। इसमें मात्र राजा की दिग्विजय से सम्बन्धित गतिविधियों का वर्णन है। उसने अपने ऊपर एक साथ हुए आक्रमण का वीरता पूर्वक सामना किया। शत्रु को उसी के क्षेत्र में जाकर चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने मारा है। पश्चिम में वाह्लिकों को सिन्धु के सात मुखों (धाराओं) को पर करके जीता। शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता, काबुल की ओर से आने वाली कुभा और सिन्धु, नदी ये सिन्धु (समुद्र) की सात धाराएं हैं। वङ्गेषु–बंगाल की ओर स्थित विभिन्न राजवंशों को उसने जीता। बंगाल के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिए बहुवचन के प्रयोग से लक्षित होता है कि पूर्व की ओर के अनेक राज्य थे जिन्होंने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया था। साथ ही दक्षिण की ओर स्थित राजाओं को भी उसने नष्ट कर दिया। दक्षिण के ये सम्भवतः वही राज्य है जिन्हें दूर होने के कारण समुद्रगुप्त ने उनका राज्य जीतकर उन्हें वापिस लौटा दिया था। प्रथम पद्य में वर्णित शत्रुओं का क्रम है बंगाल की ओर से, सिन्धु के सात मुख पार करके युद्ध एवं दक्षिण में विजय। शत्रुओं से इसी क्रम में युद्ध होना सम्भावित हो सकता है पर उनके 'समेत्यागतान्' के प्रयोग से एक साथ आक्रमण करने की स्थिति का वर्णन है। पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में मिलकर आए हुए एक साथ युद्ध होने की सम्भावना क्षीण है। अतः वर्णन ही शत्रुओं के आक्रमण का क्रम हो सकता है। प्रस्तुत अभिलेख युद्ध के काफी समय बाद लिखवाया गया प्रतीत होता है। इसीलिए एक पंक्ति में उल्लेख किया गया है कि उसका प्रताप आज भी पृथिवी को नहीं छोड़ रहा है। अर्थात् अभी तक है। शत्रु की हार से जनित यश आज पृथ्वी पर रहे है। युद्धों तथा राजकीय कार्यों से मानों खिन्न होकर वह धरती छोड़ कर दूसरे लोक (स्वर्ग) के आश्रय में चला गया हैं। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के किए गए पराक्रम को दिखाते हुए स्पष्ट किया गया है कि उसने 'प्राप्तेन' अर्थात् पिता से तथा 'स्वभुजार्ज्जितं' अर्थात् स्वयं जीते हुए क्षेत्र पर एकछत्र राज्य किया। उसने ऐसा राज्य स्थापित किया जिस पर अगले लगभग 80 वर्ष तक (उसके पुत्र कुमार गुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम समय तक) कोई भी आँख उठाने की हिम्मत नहीं कर सका।

चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के कार्यकलापों को संक्षेप में प्रस्तुत प्रशस्ति में वर्णित किया गया है। पूर्ण चन्द्रमा जैसे सुन्दर मुखाकृति वाले चन्द्र नामक नरेश ने इस स्तम्भ को विष्णु के पद-चिह्नों से युक्त पर्वत पर स्थापित कराया। यह पर्वत विपाशा-आधुनिक व्यास नदी के निकट माना गया है। सम्भव है यह उसी स्थान के आस पास हो जहाँ उसके भाई रामगुप्त के साथ अपमान जनक सन्धि की गयी थी। वहीं के लोगों में अपना प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए इस स्तम्भ को वहाँ गाढ़ दिया गया होगा। ऐसी सम्भावना भी व्यक्त की जाती है कि स्तम्भ की स्थापना के समय यह लेख उस पर उत्कीर्ण नहीं रहा होगा। बाद के समय में कुमारगुप्त (प्रथम) के राज्य के प्रारम्भ में यह लेख खुदवाया गया होगा। बाद के समय में इसे दिल्ली में वर्तमान स्थान पर पुनः स्थापित किया गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

17

विग्रहराज वीसलदेव का दिल्ली स्तम्भ लेख

ओं।। संवत् 1220 वैशाख 15
शाकम्भरी भूपति श्रीमदावेल्लदेवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य ।।
ओं अम्भो नाम रिपु प्रिया नयनयोः प्रत्यर्थि दन्तान्तरे
प्रत्यक्षाणि तृणानि वैभव मिलत्काष्ठं यशस्तावकम्।
मार्गो लोक विरूद्ध एव विजनः शून्यं मनो विद्विषां
श्रीमद्विग्रहराजदेव भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे।। 1।।

ओम् संवत् 1220 वैशाख शुक्लपक्ष 15

शाकम्भरी के राजा श्रीमान् आवेल्लेदेव के पुत्र श्रीमान् वीसलदेव का (अभिलेख)।

रिपु की स्त्रियों की आँखो में आँसू और शत्रुदल के दाँतों के मध्य तृण दिखायी देते है, वैभव के कारण आपकी कीर्ति समस्त दिशाओं में फैल जाती है, लोक-विरूद्ध मार्ग निर्जन हो जाता है, शत्रुओं का मन शून्य हो जाता है, श्रीमान् विग्रहराजदेव! जब आप अपनी विजययात्रा करते हैं।। 1।।

लीला मन्दिर सोदरेषु भवतु स्वान्तेषु वाम भ्रुवाम्
शत्रूणां तु न विग्रह क्षितिपते न्याय्योऽत्र वासस्तव।
शङ्का वा पुरूषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारांनिधे-
निर्मथ्यापहृतश्रियः किमु भवान् क्रोडे न निद्रायित।।2।।

आपके न्याय-पूर्वक व्यवहार करते हुए, परिवार जनों को आनन्द देने वाले, अन्तःपुर की स्त्रियों को आनन्द देने वाले हो, किन्तु शत्रुओं को नहीं। आप में पुरूषोत्तम (विष्णु) की शंका होती है जिसने जलनिधि को मथ कर (राज्य श्री) को क्या अपनी गोदी में ही नहीं सुला लिया? (विष्णु ने समुद्र मंथन से लक्ष्मी प्राप्त की और आपने युद्ध रूपी समुद्र को मथ कर (राज्य लक्ष्मी) प्राप्त की है)।।2।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

।।ओं।। आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचित विजयस्तीर्थ यात्रा प्रसङ्गा-
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ विच्छेदनाभि-
र्देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसल क्षोणिपालः।।3।।

ओम्।। जिसने हिमालय पर्वत से लेकर विन्ध्याचल तक के प्रदेश को तीर्थयात्रा के रूप में (सहज) ही जीत लिया है। सिर उठाने वाले राजाओं पर प्रहार करने वाले, तथा विनम्र राजाओं पर प्रसन्नता प्रकट करने वाले म्लेच्छों का नाश करके आर्यावर्त देश को पुनः 'आर्यों का देश' नाम से सार्थक बनाया है, वह शाकम्भरी का स्वामी राजा वीसलदेव संसार में विजयी हो।।3।।

ब्रूते संप्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी भूपतिः
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः।
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेष स्वीकरणाय माऽस्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः।।4।।

चौहान-वंश के तिलक शाकम्भरी के विजयी राजा श्रीविग्रहराज अपने कुलपुत्रों से कहते हैं कि हमने हिमालय से लेकर विन्ध्याचल के मध्यवर्ती धरती को कर देने के लिए बाध्य कर दिया है (अपने अधीन कर लिया है)। अब अवशिष्ट क्षेत्रों को अपने अधिकार में तुम लोगो का मन उद्योग-शून्य नहीं हो।।5।।

संवत् श्रीविक्रमादित्ये 1220 वैशाख शुति 15 गुरौ।। लिखितमिदं राजादेशात् ज्योतिषिक श्री तिलकराज प्रत्यक्षं गौडान्वय कायस्थ माहव पुत्र श्रीपतिना। अत्र समये महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक्षणपालः।।

विक्रम संवत् 1220 वैशाख शुक्ल की पूर्णिमा तिथि गुरूवार को राजा विग्रहराज के आदेश से ज्योतिषी श्री तिलकराज के समक्ष "गौड़" वंश में उत्पन्न कायस्थ माहव के पुत्र श्रीपति ने इस लेख को लिखा। इस समय राजकुमार श्रीसल्लक्षणपाल महामन्त्री है।

विग्रहराज का दिल्ली-टोपरा स्तम्भ लेख

दिल्ली में राजघाट के निकट फिरोजशाह कोटला के ऊपर अशोक का स्तम्भ स्थापित हैं। इस पर अशोक द्वारा लिखवाए गए सात लेख उत्कीर्ण हैं। उसी स्तम्भ पर प्रस्तुत लेख भी उत्कीर्ण है। यह स्तम्भ अंबाला के यमुनानगर के टोपरा ग्राम में स्थित था। फिरोजशाह इस स्तम्भ को टोपरा से यमुना मार्ग से दिल्ली ले आया और उसे अपने किले के ऊपर स्थापित करवाया। इसीलिए इस स्तम्भ को दिल्ली-टोपरा लाया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

था। वह एक अन्य स्तम्भ मेरठ से उखड़वा कर दिल्ली लाया था। इस पर भी अशोक का ही लेख उत्कीर्ण है। यह दिल्ली-मेरठ स्तम्भ के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना कुश्क-शिकार पहाड़ी पर वर्तमान में हिन्दूराव अस्पताल के मुख्य द्वार के सामने स्थापित करवायी गयी थी। फिरोजशाह को इन स्तम्भों के प्रति जिज्ञासा थी। अज्ञानता वश लेकिन अपने ज्ञान पर गर्वित 'विद्वानों' ने इन्हें भीम की गदा के रूप में वर्णित किया।

अशोक के दिल्ली-टेपरा स्तम्भ पर उत्कीर्ण यह लेख विग्रहराज का है। वे वीसलदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। विग्रहराज चाह्मानों-चौहानों-के वंश का नरेश है। इनके शासन का केन्द्र राजस्थान का शांकम्भरी-सांभर- नामक स्थान था। चौहानों ने महमूद गजनवी के उत्तराधिकारी तुर्कों के विरुद्ध अनेक युद्ध किए। उन्होंने हांसी तथा दिल्ली के मध्यवर्ती क्षेत्र पर अधिकार करके हिमालय-पर्यन्त क्षेत्र को तुर्कों से विहीन कर दिया। यह लेख राजपूत काल के अन्तिम चरण में राजस्थान एवं पंजाब की तत्कालीन राजैतिक स्थितियों एवं गतिविधियों पर संकेत करता है। इसी वंश में विग्रहराज वीसलदेव राजा हुए। ये राजा आवेल्लदेव के पुत्र थे। इसी नरेश के वीरता-पूर्ण कार्यों का उल्लेख प्रस्तुत अभिलेख में किया गया है। यह अभिलेख विक्रम संवत् 1220(1163 ई०) के वैशाख मास की शुदि 15 तिथि को लिखवाया गया है। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व महमूद गजनवी अपने एक के बाद एक आक्रमणों से भारत के उत्तर-पश्चिमी राज्यों पंजाब, सिन्ध, कन्नौज इत्यादि का पतन कर चुका था। उसकी मृत्यु के बाद ये क्षेत्र तुर्कों के नियन्त्रण में थे। इस नियन्त्रण को मालव के नरेश भोज, चेदि के नरेश कर्ण, गहड़वाल राजा चन्द्र ने उनके बढ़ते कदमों को रोका। इसी क्रम में चौहानों ने वीरतापूर्ण पराक्रम से तुर्कों पर विजय प्राप्त की।

चौहानों के पराक्रम प्रदर्शन से शत्रु हत-प्रभ थे। विग्रहराज के शत्रु पर चढ़ाई करने पर वे किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाते थे। शत्रु पर चढा़ई इतनी साधारण होती थी कि वह विग्रहराज तथा उनके सैनिको के लिए मात्र उत्सव सा होता था, यह मानों खेल खेल में किए गए युद्ध होते थे। उसमें कोई विशेष प्रयास नही दिखाई देता था, पर शत्रुओं की स्त्रियाँ अपने परिवार के पुरूषों का विनाश निश्चित मानकर अश्रू-युक्त हो जाती थीं। उन किंकर्त्तव्यविमूढ सैनिकों को तो सूझता ही नहीं था कि वे क्या करे। सैनिक हैं तो युद्ध करना उनका कर्तव्य है पर युद्ध है तो मृत्यु निश्चित है। अतः लड़े अथवा युद्ध से भागें- उनके समक्ष नहीं आ रहा। वे ऊहा पोह में डूबे मुख मे घास के तिनके लेकर अपनी निर्णय अनिर्णय की अवस्था युक्त सूने मन को प्रदर्शित कर रहे है। युद्ध की स्थिति होने अथवा न होने पर भी राज्य की कानून-व्यवस्था का भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुचारू संचालन हो रहा था। नियम-पालन न करने वाले भी राज्य में दिखाई नहीं दे रहे थे। वीसलदेव के पराक्रम एवं शत्रु-विजय से उत्पन्न यश चारों ओर फैला हुआ था। इन क्षेत्रों मे वीसलदेव इस प्रकार युद्ध कर आए मानों वे तीर्थं यात्रा कर आए हों। उनका युद्ध-कौशल सहजता से भरा था। उसने सामना करने वालों को नष्ट कर दिया तथा विनम्र राजाओं पर प्रसन्नता प्रदर्शित की। भारतीय-परम्परा में यह प्रवृति अनेक नरेशों में दृष्टिगोचर होती है। रूद्रदामन तथा समुद्रगुप्त के अभिलखों में यह आचार दिखाई देता है।

विजयी राजाओं में एक अन्य विशेष तथ्य दिखाई देता हैं। इसमें विजित नरेश अपने वंशजों को निर्देश देता है कि उन्होंने राज्यों को जीता है। उत्तराधिकार में प्राप्त इस राज्य क्षेत्र तक ही वे अपने को सीमिन न रखें। वे उन क्षेत्रों को भी जीतने के लिए प्रयत्नशील रहें जो स्वयं नहीं जीत सके। वे 'योग-क्षेम' की भावना से प्राप्त की रक्षा करें तथा अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न-शील रहें है। वीसलदेव ने विन्ध्य से हिमालय के मध्य के क्षेत्र को जीत कर अपने नियन्त्रण में कर लिया है। उसकी इच्छा है कि तुर्कों के अधीन जो क्षेत्र वह अपने नियन्त्रण में नहीं ले पाया, उन पंजाब, सिन्ध आदि क्षेत्रों पर विजय के लिए उसके उत्तराधिकारी प्रयत्नशील रहें।

वीसलदेव का प्रस्तुत लेख श्रीपति ने लिखवाया है। वह गौड-वंशीय कायस्थाव माहव का पुत्र है। उसने ज्योतिषि श्रीतिलकराज के सान्निध्य में यह लेख लिखवाया है। इसे लिखवाने के लिए श्रीतिलक राज ने राजा के आदेश का पालन किया है। राजकुमार श्री सल्लक्षणपाल उस क्षेत्र में महामन्त्री हैं। ये स्थानीय क्षेत्रीय राजपाल हो सकते हैं। श्रीपति द्वारा लिखित प्रस्तुत अभिलेख की भाषा सहज एवं सरल है। विषय के अनुकूल शब्द-योजना एवं प्राञ्जुल वर्णन शैली प्रयुक्त है। समस्त-पदों का कम प्रयोग करके इसे सुगम बनाया गया है। वैदर्भी रीति युक्त छोटे समासों का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास तथा श्लेष अलंकारों से इस रचना को सुशोभित किया गया है। उपमा तथा रूपक अलंकारों की छाया भी दिखाई देती है। शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा छंदों का उपयोग किया गया है। अभिलेखों के लेखक प्रतिभा-प्रदर्शन का सीमित अवसर पाते थे। वे उन्हीं सीमाओं में अपना लाघव प्रदर्शित करते थे। इसीलिए यदा-कदा अशुद्धियां भी प्राप्त हो जाती हैं। वे व्याकरण-सम्मत नहीं होती थीं। प्रस्तुत लेख भी इनसे अछूता नहीं है। इस पर भी केवल चार पद्यों में लिखित प्रस्तुत अभिलेख शुद्ध संस्कृत में लेखन का सुन्दर उदाहरण है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिशिष्ट

परिशिष्ट-A
अभिलेखों की भाषा

प्राचीन पठित विस्तृत अभिलेख अशोक के हैं। उसके लेखों में संस्कृत का प्रयोग न होकर पालि/प्राकृत भाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। विभिन्न विद्वानों ने मत प्रकट किया कि अशोक के समय में संस्कृत का पर्याप्त प्रयोग नहीं होता रहा होगा। उसके समय तक संस्कृत में लिखित अभिलेख प्राप्त भी नहीं होते। परन्तु लगभग समकालीन पाणिनि द्वारा प्रस्तुत व्याकरण संस्कृत के पर्याय प्रचलन की पुष्टि करती है। पाणिनि द्वारा अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख संस्कृत की उपस्थिति को प्रमाणित करता है। यास्क की स्थिति, यास्क के पूर्ववर्ती निरुक्त-कारों की स्थिति, उनसे भी पूर्व निघण्टुओं का उल्लेख संस्कृत के कम से कम डेढ़ हजार वर्ष ईसा पूर्व में विद्यमान होने का संकेत करते हैं। अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रति अनुराग-वश पालि/प्राकृत का प्रयोग किया। यह जन-साधारण की भाषा थी। संस्कृत तथा पालि/प्राकृत साथ-साथ प्रचलन में रही भाषाएँ हैं। दोनों प्रकार के भाषाओं के सह-अस्तित्व से उन पर परस्पर प्रभाव होना स्वाभाविक है। डी.सी. सरकार का मत है कि उत्तर-पश्चिमी भारत में उपलब्ध अशोक के लेखों की भाषा अन्य क्षेत्रों से प्राप्त लेखों की प्राकृत भाषा से अपेक्षाकृत संस्कृत के निकट है। दक्षिण से प्राप्त अशोक के लघु लेख तथा कालसी के लेखों में संस्कृत एवं प्राकृत का समान प्रभाव दिखाई देता है। सरकार का यह मत इस तथ्य को बल देता है कि संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाएं अशोक के समय में प्रचलित थीं। अशोक ने प्राकृत-भाषा को संस्कृत के समक्ष अधिमान दिया। कालान्तर में संस्कृत भाषा में ही लिखित अभिलेख प्राप्त होते हैं। प्राकृत का प्रभाव वाक्य-विन्यास पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनमें प्राकृत शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। यह एक मिश्रित भाषा बनी हुई प्राप्त होती है। विद्वान् इस भाषा के प्रयोग को हाईब्रिड संस्कृत का नाम देते हैं। डेमस्टीग्ट ने इसे अभिलेखीय मिश्रित/संकरित संस्कृत (Epigraphical Hybrid Sanskrit) कहा है। एजर्टन ने बौद्ध साहित्य के प्रभाव से आये परिवर्तन को आधार मानकर इस भाषा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को बौद्ध मिश्रित/संकरित संस्कृत (Buddhist Hybrid Sanskrit) नाम दिया। सेनार्ट ने इस भाषा को (Monumental) प्राकृत माना है। अशोक के लेखें में प्राकृत के तीन रूप प्राप्त होते हैं– पूर्व रूप, पश्चिमी रूप तथा उत्तर-पश्चिमी रूप। अशोक के पश्चात् पूर्वी क्षेत्र में (संभवतःमागधी) की प्राकृत का प्रचलन जारी रहा जबकि उसके अन्य रूपों का प्रभाव कुछ कम हो गया था। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व) से दूसरी शताब्दी ईस्वी के पुलुमवि के नासिक गुहा से प्राप्त लेख अपने समय के अभिलेखों में प्राकृत के प्रयोग युक्त काव्य के प्रमुख उदाहरण हैं। शक-पार्थियन तथा कुषाणों के लेख में प्राकृत एवं संस्कृत के मिश्रण के रूप का प्रारम्भिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। यह मिश्रित भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत अथवा प्राकृत प्रभावित संस्कृत थी। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख की भाषा को देखकर डी.सी. सरकार ने अपना मंतव्य प्रकट किया है कि उत्तर-पश्चिमी भारत के विदेशी शासकों के दरबारों में संस्कृत को सरंक्षण प्राप्त रहा होगा। गुप्त-काल में अभिलेखों की भाषा के रूप मे संस्कृत मानक भाषा बन गयी थी। पर यह संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं के प्रयोग में कोई सीमा रेखा नहीं थी। उनका स्वतन्त्र प्रयोग होता था। संस्कृत लिखते-लिखते लेखक प्राकृत शब्दों का प्रयोग स्वभाविक रूप से कर जाते थे। पश्चिमी भारत से प्राप्त लेखों में चतुर्थ शताब्दी ई० तक संस्कृत का पूर्ण वर्चस्व स्थापित नहीं हुआ था। इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी चतुर्थ शताब्दी ई० के पूर्वार्ध तक प्राकृत का प्रभाव विद्यमान रहा। मानक रूप से साहित्यिक प्रयोग में आने वाली प्राकृत महाराष्ट्रीय अथवा शौरसेनी तथा मगधी के स्वरूप में सामने आती है। परन्तु अभिलेखों में इनका प्रयोग गौण ही था। खारवेल के अभिलेख में इसके कुछ उदाहरण प्राप्त है; जिसके लिए कुछ विद्वानों का विचार है कि इस अभिलेख के लेखक महाराष्ट्र से उड़ीसा आए होंगे। अभिलेखों में प्राकृत मिश्रित संस्कृत का प्रयोग इतिहास के मध्यकाल के प्रारम्भ तक प्राप्त होते हैं।

दक्षिण में तीसरी शताब्दी ईस्वी तक के लेखों के पश्चात् संस्कृत की ओर निकटता आना प्रारम्भ हो चुका था। चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध तक प्राकृत का लेखन में प्रभुत्व रहा। परन्तु द्रष्टव्य है कि इन लेखों में आशीर्वादात्मक पद्य संस्कृत में ही लिखे गए है। नागार्जुनीकोण्डा से प्राप्त चतुर्थ शताब्दी के इक्ष्वाकु नरेश एहबुल शान्तमूल (चान्तमूल) के लेख पूर्णतया संस्कृत में लेखन के प्रारम्भिक उदाहरण हैं। तेलुगु भाषी क्षेत्र में बेंगी के शालंकायन वंश के शासकों के चतुर्थ शताब्दी से सम्बन्धित प्रारम्भिक लेख प्राकृत में हैं, परन्तु पांचवी शताब्दी के उनके लेखों में प्राकृत का स्थान संस्कृत ने ले लिया। कन्नड़-भाषी क्षेत्र एवं सुदूर दक्षिण में पल्लवों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के द्वारा जारी आज्ञा-पत्रों में भी यही स्थिति दिखाई देती है। यहाँ पर भी पांचवी शताब्दी के बाद के लेख संस्कृत में लिखित हैं। मध्यकाल के अधिकांश जैन लेख प्राकृत भाषा में लिखे गए उपलब्ध होते हैं। इनमें प्राकृत के विभिन्न रूप उपलब्ध होते हैं। लगभग दसवीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध में आधुनिक भाषाओं के प्रारम्भिक उदाहरण प्राप्त होने लगे। यद्यपि उनके संकेत उससे पहले ही संकेतिक होने लगे थे। उनमें स्थानीय बोलियों का रूप भी दृश्यमान होता है।

मराठी

स्थानीय भाषाओं में लिखित अभिलेखों में प्राचीनतम लेख मराठी भाषा में लिखित हैं। इसका प्रारम्भिक उदाहरण 974 ई० का भरमुरी दान-पत्र है। ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के अनेक निजी लेख मराठी में लिखे गए हैं। यादव राजवंश के उत्कर्ष के साथ मराठी भाषा की लोकप्रियता में वृद्धि हुई। संरक्षण प्रदान करते हुए यादवों ने मराठी भाषा को ताम्र-पत्रों में प्रयोग किया। अनेक लेखों में मराठी तथा संस्कृत का मिश्रण भी प्रयोग किया गया है। कालान्तर में सोलहवीं शताब्दी में मराठी के साथ-साथ कन्नड़ भाषा का प्रयोग मिलने लगता है। इसी प्रकार समय के प्रवाह में मराठी के साथ फारसी, तेलुगु इत्यादि के साथ लिखित द्विभाषिक लेख उपलब्ध होते हैं। इनमें कभी-कभी आंशिक रूप से संस्कृत का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी

मध्य भारत, राजस्थान, कुमायूं तथा गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्रों से हिन्दी तथा उसकी उप-भाषाओं (बोलियों) में लिखित लेख ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी से प्राप्त होने लगे। इनकी बहुतायत से उपलब्धि पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी से उपलब्ध होती है। मध्य-प्रदेश के श्योपुर से प्राप्त एक जैन प्रतिमा अभिलेख इनमें से प्राचीनतम माना जा सकता है जिसका समय लगभग 1022 ई० है। मध्यकाल के उत्तरकाल (उत्तर-मध्य-काल) में हिन्दी एवं इसकी उपभाषा में लिखे गए अनेक निजी एवं शासकीय लेख प्राप्त होते हैं। वे अधिकांशतः ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण हैं। स्थानीय उपभाषाओं में लिखित पर्वतीय अंचल के कुमायूं तथा गढ़वाल से प्राप्त लेख प्रमुख हैं। राजस्थानी बोली में लिखित गुहिल नरेश मोकलसिंह का 1375 ई० का लेख प्रारम्भिक शासन पत्र है। इसमें अनेक निजी लेख लिखित प्राप्त होते हैं। इनमें पन्द्रहवीं शताब्दी में फारसी का मिश्रण उपलब्ध होने लगा। मालवा के सुल्तान ग्यासुद्दीन का 1483 ई० के समय से सम्बन्धित लेख मुख्य है। रूस में बाकू के निकट पंजाबी एवं हिन्दी के लेख उपलब्ध होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri

गुजराती

काठियावाढ़ से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध के अनेक लेख गुजराती एवं संस्कृत में मिश्रित रूप से लिखित लेख प्राप्त होते हैं। कुछ मिश्रित रूप से लिखित लेख संस्कृत और फारसी में लिखे गएं हैं, इनमें आंशिक रूप से गुजराती का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार ये त्रिभाषिक लेख हैं। इनमें गुजराती का आंशिक स्वरूप पूर्ण रूप में परिवर्तित हो गया। पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य में गुजराती भाषा के अभिलेख उपलब्ध होते हैं। ये नागरी लिपि में लिखे गए हैं। इस समय के प्रारम्भिक निजी लेख पूर्ण रूप से गुजराती भाषा में लिखित है।

उड़िया

लगभग दसवीं शताब्दी ईस्वी में उड़ीसा में संस्कृत में लिखित अभिलेखों में उड़िया का प्रभाव आना प्रारम्भ हो गया था। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पूर्वी गंग-वंश के शासन-पत्रों में संस्कृत एवं उड़िया दोनों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में अभिलेखों की भाषा के रूप में उड़िया का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। बाद के अनेक शासन-पत्र उड़िया में ही लिखे गए उपलब्ध होते हैं।

बंगला

बांग्लाभाषी अभिलेखों का आरम्भिक स्वरूप संस्कृत में स्थानीय भाषा के प्रभाव के रूप में प्राप्त होता है। तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में बंगला के अतीव सीमित उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यहां पर राजकीय कार्यों के लिए संस्कृत का ही प्रयोग प्राप्त होता है। प्राचीन संयुक्त बंगाल में पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी में भी संस्कृत प्रभुत्व वर्तमान रहा। बिहार की मैथिली से लेकर त्रिपुरा तक बंगला के स्थानीय प्रभाव नगण्य रूप से मिलते हैं। आसाम के क्षेत्र में स्थानीय अहोम भाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। अहोम राजाओं ने संस्कृत के साथ असमीया भाषा का प्रयोग किया।

तमिल

ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में अभिलेखों में क्षेत्रीय भाषाओं की छाया प्राप्त होती है। इसके तमिल होने की सम्भावना है। पल्लव नरेशों के छठी शताब्दी ईस्वी के ताम्र-पत्र अभिलेखों में संस्कृत के साथ तमिल का प्रयोग अपनी प्रारम्भिक स्थिति को प्रदर्शित करता है। इसके पश्चात् तमिल भाषा का प्रयोग बढ़ने लगा। पल्लव साम्राज्य के तेलुगु-क्षेत्रों में अभिलेख संस्कृत में लिखित हैं। तमिल क्षेत्रों में संस्कृत तथा तमिल दोनों में लेख उपलब्ध होते हैं। दसवीं शताब्दी ईस्वी में पूर्णतया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तमिल में लिखित लेख मिलने आरम्भ हो जाते हैं। फिर भी तमिल के साथ संस्कृत का प्रयोग भी प्राप्त होता है।

कन्नड

कन्नड भाषा में प्राचीनतम अभिलेख चालुक्य–राज मंगलेश (598–610 ई०) का है। एक अन्य लेख हलमिदी अभिलेख है जिसका समय छठी शताब्दी ई० का अन्तिम भाग है। पुलकेशिन के संस्कृत में लिखित एहोल अभिलेख के नीचे कन्नड में पंक्ति उत्कीर्ण है। यह एहोल अभिलेख के कुछ समय बाद लिखी गयी प्रतीत होती है। बादामों क अन्य चालुक्यों द्वारा ताम्र–पत्रों पर लिखवाये गए लेख संस्कृत में ही हैं। जबकि प्रस्तरों एवं शिलाओं पर उत्कीर्ण सरकारी और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के लेखों में कन्नड भाषा का प्रयाग प्राप्त होता है। सातवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित चालुक्य नरेश वियादित्य क अभिलेख में आरम्भिक पंक्तियाँ संस्कृत में लिखी गई हैं तथा शेष अनुदान विषयक सारा लेख कन्नड में है। परवर्ती विभिन्न राजवंशों क लेख इसी प्रकार कुछ भाग में संस्कृत तथा शेष सम्पूर्ण लेख कन्नड में ही लिखे गए हैं। इनमें कन्नड में लिखित भाग अधिक विस्तृत है। तत्पश्चात् दसवीं शताब्दी से सम्बन्धित अनेक लेखों को केवल कन्नड भाषा में ही लिखा गया है, परन्तु संस्कृत का अभाव भी नहीं है।

कन्नड भाषा का प्रयोग अभिलेखों में छठी शताब्दी ईस्वी से दृष्टिगोचर होता है। प्राचीनतम तेलुगु अभिलेख तेलुगु–चोड़ों के हैं। ये लेख छठी से आठवीं शताब्दी के मध्य के हैं। ये अनन्तपुर तथा कुडप्पा जिलों में मिले हैं। ये तेलगु भाषा में लिखित हैं। परन्तु संस्कृत का पूर्ण अभाव भी नहीं है। आठवीं शताब्दी में यत्र–तत्र संस्कृत का प्रयोग भी तेलुगु के साथ मिल जाता है। बाद में नवीं शताब्दी के अनेक निजी लेख तेलुगु में लिखित है चोड़ों के दान–पत्र अभिलेख तेलुगु के साथ संस्कृत में भी लिखे गए हैं। वेंगी के प्रारम्भिक ताम्र–पत्र दान–पत्र संस्कृत में लिखित हैं। बादामी के चालुक्यों के ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण लेख तेलुगु–भाषी क्षेत्र में होते हुए भी संस्कृत में उपलब्ध होते हैं। लेकिन पाषाण लेख प्रायः तेलगु भाषा में लिखे गए हैं। इस प्रकार यह देखा गया है कि एक लम्बे समय तक केवल तेलुगु और संस्कृत के साथ तेलुगु में प्राप्त होते हैं। वह दोनों भाषाओं का प्रयोग लम्बे समय तक लगभग पन्द्रहवी शताब्दी तक चलता रहा।

मलयालम

चौदहवीं शताब्दी ईस्वी तक मलयालम भाषी क्षेत्र में लेख तमिल में लिखे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मिलते हैं। कुछ लेखों में मलयालम भाषा की छाया तेरहवीं शताब्दी में प्राप्त होनी प्रारम्भ होती है। पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी के लेखों में कहीं-कहीं संस्कृत में लिखित पंक्तियां भी प्राप्त होती हैं। सोलहवीं शताब्दी में मलयालम का आधिपत्य पूर्ण रूप से हो गया। ऐसा भी देखा गया है कि मलयालम लिपि में लिखित अभिलेखों में तुलु भाषा का प्रयोग किया गया है। ये लेख दक्षिणी कन्नड जिले से सम्बन्धित हैं। उत्तर मध्यकाल से सम्बन्धित अनेक लेख तुलु भाषा में मलयालम लिपि में लिखित लेख मिल जाते हैं।

द्विभाषी लेखों में प्राय: देखा गया है कि लेख के आरम्भ में अथवा भगवत् स्तुति के प्रसंग में संस्कृत भाषा को प्राथमिकता दी गई है। शेष विषय-वस्तु स्थानीय भाषा में लिखी गई है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिशिष्ट-B

बृहत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ विदेशों में भी पहुंची। इसने स्थानीय सम्पर्क के साथ विभिन्न रूपों को प्राप्त किया। इस प्रकार ब्राह्मी लिपि से विकसित लिपियों में सिंघली लिपि, मालदीव की लिपि, मालाबारी लिपि, इंडोनेशिया की लिपि, चम्पा लिपि, खमेर लिपि, बर्मी (आधुनिक म्याँमार) लिपि, शान लिपि, स्यामी लिपि एवं फिलीपीन की लिपि मुख्य हैं। इन पर मुख्य रुप से 'ग्रंथ लिपि' का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

सिंहली लिपि– श्रीलंका में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के लगभग ब्राह्मी लिपि का प्रवेश हुआ। तीसरी शताब्दी ई०पू० में उस पर स्थानीय प्रभाव की छाया दिखाई देने लगी। कालान्तर में यही सिंहली रूप में विकसित हुई। डेविड डिरिंजर ने ब्राह्मी लिपि से सिंहली लिपि की विकास यात्रा को चार स्तरों पर विभक्त किया है। इसे सिंहली के ही भिन्न-भिन्न रूप मानता है।

1. **पालि-प्राकृत सिंहली–** ईसापूर्व तृतीय शताब्दी से चौथी शताब्दी ईस्वी तक प्रचलित लिपि;
2. **पूर्व-सिंहली लिपि–** पांचवी शताब्दी ईस्वी से आठवीं शताब्दी ईस्वी तक की लिपि;
3. **मध्य-सिंहली लिपि–** नौवी शताब्दी ई० से तेरहवी शताब्दी ईस्वी तक प्रयुक्त लिपि, और
4. **आधुनिक सिंहली लिपि–** तेरहवी शताब्दी ईस्वी से वर्तमान काल तक की प्रचलित लेखन पद्धति आधुनिक सिंहली लिपि है। आधुनिक सिंहली लिपि पर ग्रन्थ लिपि का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक सिंहली लिपि के दो रूप– ईलु तथा आधुनिक सिंहली लिपि प्राप्त होते हैं। आधुनिक सिंहली लिपि को मिश्र लिपि भी माना जाता है। ईलु लिपि काव्य लेखन के लिए प्रयुक्त होती

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। आधुनिक ध्वनियों के लिए इसमें सम्पूर्ण वर्ण उपलब्ध नहीं है। आधुनिक सिंहली श्रीलंका में बाहर से आई एवं सम्मिलित की गई ध्वनियों से युक्त लेखन-कार्य में प्रयुक्त होती है। काव्य-लेखन तथा आधुनिक सिंहली लेखन दोनों में प्रयोग होने के कारण ही इसे मिश्र लिपि भी कहा जाता है।

मालदीव की लिपि–मालदीव में श्रीलंका एवं बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव रहा। अनेक शताब्दियों तक उनका राजनैतिक प्रभाव भी रहा। अतः मालदीव में ब्राह्मी लिपि की लेखन पद्धती से विकसित सिंहली लिपि से प्रभावित लेखन स्वरूप प्राप्त होता है। यह लेखन पद्धति ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी से प्राप्त होना प्रारम्भ होता है। इसका प्राचीन रूप से 'एवेला अकुरू' के नाम से जाना जाता है। यह पद्धति तेरहवी- चौदहवी शताब्दी ईस्वी तक प्रचलित रही। तत्पश्चात् 'एवेला अकुरू' से उत्पन्न 'दिवेश अकुरू' नामक लेखन-पद्धति विकसित हुई। इसका प्रचलन अट्ठारहवीं शताब्दी ईस्वी तक रहा। पुनः विकास-क्रम में अन्य लेखन के प्रकार बने और 'गाबुली ताना' नाम की लेखन की पद्धति सामने आई। इसका विभिन्न एवं अनेक स्थानीय भेदों सहित वर्तमान काल तक प्रचलन जारी है।

इण्डोनेशिया की लिपि– इण्डोनेशिया की साक्षरता प्रतिशत अधिक नहीं है जो लोग साक्षर हैं वे अधिकांशतः रोमन तथा अरबी लिपियों का प्रयोग करते हैं तथापि कुछ लोग अपनी स्थानीय लिपि से भी जुड़े हुए हैं। इन स्थानीय लिपियों में से निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. **काबि अथवा प्राचीन जावा की लिपि**– काबि लिपि का प्रयोग जावा द्वीप में प्रचलित है। इसके प्राचीन उदाहरण आठवीं शताब्दी ईस्वी से प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि गुजरातियों के यहां आने से इस लेखन पद्धति का इंडोनेशिया में परिचय हुआ। अन्य विद्वानों के अनुसार इस लेखन पद्धति का विकास 'ग्रंथ लिपि' के प्रभाव से हुआ। परन्तु पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी के पश्चात् इस लिपि के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त नहीं होते। सोलहवी शताब्दी ईस्वी में मध्य-जावा की लिपि विकसित हुई, जिससे अट्ठारहवी शताब्दी ईस्वी मे जावा की आधुनिक लेखन-पद्धति उद्भूत हुई।

2. **बटक लिपि**– काबि लिपि का परिवर्तित रुप बटक लिपि है। यह सुमात्रा में प्रयोग में लाई जाती है। इसको नीचे से ऊपर की दिशा में बायें से दायीं और लिखा जाता है। काबि लिपि का एक अन्य रूप दक्षिण-पश्चिम सुमात्रा में उपलब्ध होता है। इसे बटक एवं लाम्पांग बोलियां लिखने के लिए प्रयोग किया जाता है। इन्हें लाम्पांग और रेज्जांग लिपियों के नाम से जाना जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

3. **चंपा लिपि–** कम्बोडिया तथा चम्पा द्वीप में प्रयोग होने वाली लिपि को चम्पा लिपि कहते हैं। इसके प्रारम्भिक उदाहरण तीसरी शताब्दी ईस्वी से दृष्टिगोचर होते हैं। आठवीं शताब्दी ईस्वी आते-आते इस लेखन-पद्धति का सम्पूर्ण विकास हो चुका था। इस पर दक्षिण भारतीय लेखन-शैलियों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पहले यह बाई ओर से दायीं ओर लिखी जाती थी। आजकल इस्लामी प्रभाव के कारण दायीं ओर से बायीं ओर लिखी जाती है। वर्तमान में इस लेखन पद्धति को **'अखरस्राह'** नाम दिया गया है। इसके दो स्वरूप उपलब्ध होते हैं। इनमें से एक का प्रयोग विभिन्न भेदों के साथ अन्नाम क्षेत्र में तथा दूसरे स्वरूप का प्रयोग कम्बोडिया में होता है।

कम्बोडिया में लेखन के लिए एक अन्य लिपि का प्रयोग उपलब्ध होता है। इसे खमेर लिपि कहते हैं। इसके प्रारम्भिक उदाहरण लगभग सातवी शताब्दी ईस्वी से प्राप्त होते हैं। यह लिपि ग्रन्थ लिपि से अत्यधिक समान रूप से युक्त हैं। अपने क्रमिक विकास के मार्ग से चलते हुए यह वर्तमान लेखन शैली के रूप को प्राप्त करती है। आधुनिक काल में यह **'अखर स्रींग'** के रूप में प्रचलित है।

बर्मा (आधुनिक म्यांमार) में लेखन के अनेक प्रकार के भेद प्राप्त होते हैं। यहां पर मुख्य रूप से मान-लिपि और प्यू लिपि का प्रयोग होता है। मान लिपि के वर्ण गोलाकार रूप से प्रयुक्त होते हैं। यह रूप ग्रन्थ लिपि के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। चम्पा और कम्बोडिया से आये लोग मान लिपि का प्रयोग करते हैं। प्यू नामक जाति के लोग प्यू-लिपि उपयोग में लाते हैं। इसका प्रयोग आजकल नगण्य हो चुका है। इसका प्रयोग तिब्बती-बर्मी शाखा की एक भाषा के लेखन के लिए किया जाता है। म्यांमार के अधिकांश लोग बर्मी लिंपि का प्रयोग करते हैं। इस लिपि में 'किउसा' तथा पाली लेखन का परिगणन होता है। आधुनिक 'चाल्हो लिपि' का विकास 'किउसा लिपि' से हुआ। म्यांमार के करेन जाति के निवासी मूल रूप से 'करेन लिपि' का प्रयोग करते थे। 'करेन लिपि' चम्पा की लिपि पर आधारित थी। इस लेखन-पद्धति का वर्तमान में लोप हो चुका है।

शान लिपियां– स्याम की थाई भाषा तथा उसकी विभिन्न बोलियों के लेखन के लिए एकाधिक लेखन-पद्धतियां प्राप्त होती हैं। इनमें 'लाओ' प्रमुख हैं। परम्पराओं के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी में 'मान लिपि' से 'शान लिपि' का विकास हुआ। आधुनिक 'लाओ लिपि' पर म्यांमार की बर्मी लिपि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। 'लाओ लिपि' जैसी अन्य लिपियों में 'लू' तथा 'कुन' लिपियां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी सम्मिलित हैं। ये रूप रचना में परस्पर अत्यन्त निकट है। 'अहामी, खाम्ती तथा एतोनिया' लिपियाँ स्याम की अन्य प्रमुख लिपियां हैं। अहामी एवं खाम्ती लेखन पद्धतियां शान लिपि के ही भेद हैं। इनमें से अहामी का वर्तमान में प्रयोग से बाहर हो चुकी है। आसाम के म्यांमार के निकटवर्ती सीमा-क्षेत्रों में एतोनिया लिपि के उदाहरण मिल जाते हैं।

स्यामी लिपि– सिंहली-पालि के लेखन के लिए स्यामी लिपि प्रयोग में लाई जाती है। इसका आविर्भाव खमेर लिपि के आधार पर हुआ। स्यामी लिपि पर ग्रन्थ लिपि का स्पष्ट प्रभाव प्राप्त होता है। वर्तमान काल में प्रयोग होने वाली स्यामी लिपि में प्राचीन काल की स्यामी लिपि से अधिक भिन्नता दिखाई नहीं देती। यह स्याम देश में सर्वाधिक प्रचलित लेखन पद्धति है। इसमें तीस स्वरों का प्रयोग इस की भाषागत विशेषता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिशिष्ट-C

अशोक-कालीन ब्राह्मी लिपि के वर्णों पर स्वर-चिह्नों का प्रयोग

स्वर चिह्न -

𑀓	𑀓𑀸	𑀓𑀺	𑀓𑀻	𑀓𑀼	𑀓𑀽	𑀓𑁂	𑀓𑁃	𑀓𑁄	𑀓𑁅	𑀓𑀁	𑀓𑀂
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः
𑀔	𑀔𑀸	𑀔𑀺	𑀔𑀻	𑀔𑀼	𑀔𑀽	𑀔𑁂	𑀔𑁃	𑀔𑁄	𑀔𑁅	𑀔𑀁	𑀔𑀂
ख	खा	खि	खी	खु	खू	खे	खै	खो	खौ	खं	खः
𑀕	𑀕𑀸	𑀕𑀺	𑀕𑀻	𑀕𑀼	𑀕𑀽	𑀕𑁂	𑀕𑁃	𑀕𑁄	𑀕𑁅	𑀕𑀁	𑀕𑀂
ग	गा	गि	गी	गु	गू	गे	गै	गो	गौ	गं	गः
𑀖	𑀖𑀸	𑀖𑀺	𑀖𑀻	𑀖𑀼	𑀖𑀽	𑀖𑁂	𑀖𑁃	𑀖𑁄	𑀖𑁅	𑀖𑀁	𑀖𑀂
घ	घा	घि	घी	घु	घू	घे	घै	घो	घौ	घं	घः
𑀘	𑀘𑀸	𑀘𑀺	𑀘𑀻	𑀘𑀼	𑀘𑀽	𑀘𑁂	𑀘𑁃	𑀘𑁄	𑀘𑁅	𑀘𑀁	𑀘𑀂
च	चा	चि	ची	चु	चू	चे	चै	चो	चौ	चं	चः
𑀙	𑀙𑀸	𑀙𑀺	𑀙𑀻	𑀙𑀼	𑀙𑀽	𑀙𑁂	𑀙𑁃	𑀙𑁄	𑀙𑁅	𑀙𑀁	𑀙𑀂
छ	छा	छि	छी	छु	छू	छे	छै	छो	छौ	छं	छः
𑀚	𑀚𑀸	𑀚𑀺	𑀚𑀻	𑀚𑀼	𑀚𑀽	𑀚𑁂	𑀚𑁃	𑀚𑁄	𑀚𑁅	𑀚𑀁	𑀚𑀂
ज	जा	जि	जी	जु	जू	जे	जै	जो	जौ	जं	जः
𑀛	𑀛𑀸	𑀛𑀺	𑀛𑀻	𑀛𑀼	𑀛𑀽	𑀛𑁂	𑀛𑁃	𑀛𑁄	𑀛𑁅	𑀛𑀁	𑀛𑀂
झ	झा	झि	झी	झु	झू	झे	झै	झो	झौ	झं	झः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

𑀜	𑀜𑀸	𑀜𑀺	𑀜𑀻	𑀜𑀼	𑀜𑀽	𑀜𑁂	𑀜𑁃	𑀜𑁄	𑀜𑁅	𑀜𑀁	𑀜𑀂
ञ	ञा	ञि	ञी	ञु	ञू	ञे	ञै	ञो	ञौ	ञं	ञः
𑀝	𑀝𑀸	𑀝𑀺	𑀝𑀻	𑀝𑀼	𑀝𑀽	𑀝𑁂	𑀝𑁃	𑀝𑁄	𑀝𑁅	𑀝𑀁	𑀝𑀂
ट	टा	टि	टी	टु	टू	टे	टै	टो	टौ	टं	टः
𑀞	𑀞𑀸	𑀞𑀺	𑀞𑀻	𑀞𑀼	𑀞𑀽	𑀞𑁂	𑀞𑁃	𑀞𑁄	𑀞𑁅	𑀞𑀁	𑀞𑀂
ठ	ठा	ठि	ठी	ठु	ठू	ठे	ठै	ठो	ठौ	ठं	ठः
𑀟	𑀟𑀸	𑀟𑀺	𑀟𑀻	𑀟𑀼	𑀟𑀽	𑀟𑁂	𑀟𑁃	𑀟𑁄	𑀟𑁅	𑀟𑀁	𑀟𑀂
ड	डा	डि	डी	डु	डू	डे	डै	डो	डौ	डं	डः
𑀠	𑀠𑀸	𑀠𑀺	𑀠𑀻	𑀠𑀼	𑀠𑀽	𑀠𑁂	𑀠𑁃	𑀠𑁄	𑀠𑁅	𑀠𑀁	𑀠𑀂
ढ	ढा	ढि	ढी	ढु	ढू	ढे	ढै	ढो	ढौ	ढं	ढः
𑀡	𑀡𑀸	𑀡𑀺	𑀡𑀻	𑀡𑀼	𑀡𑀽	𑀡𑁂	𑀡𑁃	𑀡𑁄	𑀡𑁅	𑀡𑀁	𑀡𑀂
ण	णा	णि	णी	णु	णू	णे	णै	णो	णौ	णं	णः
𑀢	𑀢𑀸	𑀢𑀺	𑀢𑀻	𑀢𑀼	𑀢𑀽	𑀢𑁂	𑀢𑁃	𑀢𑁄	𑀢𑁅	𑀢𑀁	𑀢𑀂
त	ता	ति	ती	तु	तू	ते	तै	तो	तौ	तं	तः
𑀣	𑀣𑀸	𑀣𑀺	𑀣𑀻	𑀣𑀼	𑀣𑀽	𑀣𑁂	𑀣𑁃	𑀣𑁄	𑀣𑁅	𑀣𑀁	𑀣𑀂
थ	था	थि	थी	थु	थू	थे	थै	थो	थौ	थं	थः
𑀤	𑀤𑀸	𑀤𑀺	𑀤𑀻	𑀤𑀼	𑀤𑀽	𑀤𑁂	𑀤𑁃	𑀤𑁄	𑀤𑁅	𑀤𑀁	𑀤𑀂
द	दा	दि	दी	दु	दू	दे	दै	दो	दौ	दं	दः
𑀥	𑀥𑀸	𑀥𑀺	𑀥𑀻	𑀥𑀼	𑀥𑀽	𑀥𑁂	𑀥𑁃	𑀥𑁄	𑀥𑁅	𑀥𑀁	𑀥𑀂
ध	धा	धि	धी	धु	धू	धे	धै	धो	धौ	धं	धः
𑀦	𑀦𑀸	𑀦𑀺	𑀦𑀻	𑀦𑀼	𑀦𑀽	𑀦𑁂	𑀦𑁃	𑀦𑁄	𑀦𑁅	𑀦𑀁	𑀦𑀂
न	ना	नि	नी	नु	नू	ने	नै	नो	नौ	नं	नः
𑀧	𑀧𑀸	𑀧𑀺	𑀧𑀻	𑀧𑀼	𑀧𑀽	𑀧𑁂	𑀧𑁃	𑀧𑁄	𑀧𑁅	𑀧𑀁	𑀧𑀂
प	पा	पि	पी	पु	पू	पे	पै	पो	पौ	पं	पः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

𑀨	𑀨𑀸	𑀨𑀺	𑀨𑀻	𑀨𑀼	𑀨𑀽	𑀨𑁂	𑀨𑁃	𑀨𑁄	𑀨𑁅	𑀨𑀁	𑀨𑀂
फ	फा	फि	फी	फु	फू	फे	फै	फो	फौ	फं	फः
𑀩	𑀩𑀸	𑀩𑀺	𑀩𑀻	𑀩𑀼	𑀩𑀽	𑀩𑁂	𑀩𑁃	𑀩𑁄	𑀩𑁅	𑀩𑀁	𑀩𑀂
ब	बा	बि	बी	बु	बू	बे	बै	बो	बौ	बं	बः
𑀪	𑀪𑀸	𑀪𑀺	𑀪𑀻	𑀪𑀼	𑀪𑀽	𑀪𑁂	𑀪𑁃	𑀪𑁄	𑀪𑁅	𑀪𑀁	𑀪𑀂
भ	भा	भि	भी	भु	भू	भे	भै	भो	भौ	भं	भः
𑀫	𑀫𑀸	𑀫𑀺	𑀫𑀻	𑀫𑀼	𑀫𑀽	𑀫𑁂	𑀫𑁃	𑀫𑁄	𑀫𑁅	𑀫𑀁	𑀫𑀂
म	मा	मि	मी	मु	मू	मे	मै	मो	मौ	मं	मः
𑀬	𑀬𑀸	𑀬𑀺	𑀬𑀻	𑀬𑀼	𑀬𑀽	𑀬𑁂	𑀬𑁃	𑀬𑁄	𑀬𑁅	𑀬𑀁	𑀬𑀂
य	या	यि	यी	यु	यू	ये	यै	यो	यौ	यं	यः
𑀭	𑀭𑀸	𑀭𑀺	𑀭𑀻	𑀭𑀼	𑀭𑀽	𑀭𑁂	𑀭𑁃	𑀭𑁄	𑀭𑁅	𑀭𑀁	𑀭𑀂
र	रा	रि	री	रु	रू	रे	रै	रो	रौ	रं	रः
𑀮	𑀮𑀸	𑀮𑀺	𑀮𑀻	𑀮𑀼	𑀮𑀽	𑀮𑁂	𑀮𑁃	𑀮𑁄	𑀮𑁅	𑀮𑀁	𑀮𑀂
ल	ला	लि	ली	लु	लू	ले	लै	लो	लौ	लं	लः
𑀯	𑀯𑀸	𑀯𑀺	𑀯𑀻	𑀯𑀼	𑀯𑀽	𑀯𑁂	𑀯𑁃	𑀯𑁄	𑀯𑁅	𑀯𑀁	𑀯𑀂
व	वा	वि	वी	वु	वू	वे	वै	वो	वौ	वं	वः
𑀰	𑀰𑀸	𑀰𑀺	𑀰𑀻	𑀰𑀼	𑀰𑀽	𑀰𑁂	𑀰𑁃	𑀰𑁄	𑀰𑁅	𑀰𑀁	𑀰𑀂
श	शा	शि	शी	शु	शू	शे	शै	शो	शौ	शं	शः
𑀱	𑀱𑀸	𑀱𑀺	𑀱𑀻	𑀱𑀼	𑀱𑀽	𑀱𑁂	𑀱𑁃	𑀱𑁄	𑀱𑁅	𑀱𑀁	𑀱𑀂
ष	षा	षि	षी	षु	षू	षे	षै	षो	षौ	षं	षः
𑀲	𑀲𑀸	𑀲𑀺	𑀲𑀻	𑀲𑀼	𑀲𑀽	𑀲𑁂	𑀲𑁃	𑀲𑁄	𑀲𑁅	𑀲𑀁	𑀲𑀂
स	सा	सि	सी	सु	सू	से	सै	सो	सौ	सं	सः
𑀳	𑀳𑀸	𑀳𑀺	𑀳𑀻	𑀳𑀼	𑀳𑀽	𑀳𑁂	𑀳𑁃	𑀳𑁄	𑀳𑁅	𑀳𑀁	𑀳𑀂
ह	हा	हि	ही	हु	हू	हे	है	हो	हौ	हं	हः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विद्यानिधि प्रकाशन
डी-10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली-110090
e-mail : vidyanidhiprakashan@hotmail.com

ISBN 93-85539-02-7
9789385539022

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection